पूज्य श्री अम ... ल्या ६३

महासती-रुक्मणी

4040

卐

-: प्रवचनकार :-

बालब्रह्मचारी शास्त्रोद्धारक जैनधर्म दिवाकर
जैनाचार्य स्व० पूज्य श्री अमोलकऋषिजी
महाराज के सुशिष्य
पण्डित मुनि श्री कल्याणऋषिजी महाराज

संयोजक:—
दूरदर्शी महात्मा श्री मुल्तानऋषिजी महाराज

सम्पादक:—
शान्तप्रकाश "सत्यदास"

वीर संवत् २४८५ अमोलाब्द २३

आधा मूल्य ~~७५~~ नये पैसे 50

विक्रम संवत् २०१६ मई सन् १९५९ ई.

प्रकाशकः—
श्री अमोल जैन ज्ञानालय
गली नं० २, धूलिया
(पश्चिम खानदेश)

प्रथम संस्करण १००० प्रतियाँ

मुद्रकः—
श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस, रतलाम.

प्रकाशक की ओर से

प्रेमी वाचक वृन्द !

"महिला जीवन मणिमाला" इस सिरीज़ के अन्तर्गत "महासती रुक्मिणी" नामक यह २२ वीं मणि आपकी सेवा में पेश की जा रही है।

महिलाएँ सुधर जायँ तो सारा कुटुम्ब सुधर सकता है, इसलिए महिलाओं में ज्ञान के प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है। महिलाओं की कथाओं में अधिक रुचि होती है, इसलिए कथाओं के बहाने उन्हें उपदेश देने के लिए पण्डित मुनि श्री कल्याण ऋषिजी म० सा० के प्रवचनों के आधार पर तैयार की गई मल्ली-जिन मदन रेखा और श्रीमती के बाद यह चौथी पुस्तक प्रकाशित की गई है।

इसके प्रकाशन खर्च में आर्थिक सहयोगी बनने वाले निम्नलिखित सज्जन हैं:—

२०१ श्री नेमिचंदजी पारख नासिक
२५ ,, जयवंत राजजी कटारिया की धर्मपत्नी इच्छाबाई चांदूरबजार (अमरावती)
११ श्रीमती मदनबाई भ० माणकचंदजी ललवानी -मनमाड़
११ ,, मीराबाई भ० दगडूलालजी पगारिया -धरणगांव
११ ,, मदनबाई भ० पुखराजजी आवड़ -लासलगाँव
११ ,, शान्ताबाई भ० मांगीलालजी ब्रह्मेचा - ,,
११ श्रीमान् पारसमलजी ब्रह्मेचा - ,,
११ ,, अशोककुमारजी आवड़ - ,,

११ श्रीमती प्रभाकुँवरबाई भ० नत्थूभाई —धरणगांव
११ श्रीमान् प्रभुभाई नत्थूभाई — ,,
११ ,, शान्तिलाल नत्थूभाई — ,,
११ श्रीमती सीताबाई भ० खुशालचंदजी ब्रह्मेचा —लासलगांव
११ ,, हुलासीबाई भ० बाबूलालजी ब्रह्मेचा — ,,
११ श्रीमान् मूलचंदजी लूणकरणजी बोथरा —बानिया विहर
११ श्रीमती चाँदाबाई भ० छोगमलजी बोथरा —बानिया विहर
११ श्रीमान् उत्तमचंदजी कालूरामजी संचेती (दलीचंदजी की स्मृति में —रोटवद
११ श्रीमती प्रेमबाई भ० भेरुलालजी नाहार —धुलिया
११ श्रीमती रमकूबाई भ० कालूरामजी टाँटीया —दातरती
११ श्रीमती मीराबाई भ० मोतीलालजी पगारिया —हिंगोना
११ श्रीमान् मोहनलालजी पन्नालालजी नाहर —भगूर
११ सौभाग्यवती वसंताबाई भ० पन्नालालजी नाहार —भंगूर
११ सौभाग्यवती नवल बहिन भ० व्रजलाल भाई —चालिसगाँव
११ सौभाग्यवती एक महिला सुश्राविका —धरणगाँव
११ श्रीमान् भाईचंद भाई की सुपुत्री मणिबहन —अमलनेर
११ सौभाग्यवती चम्पाबाई भ० गाँडालाल भाई —अमलनेर
५-६२ श्रीमान उत्तमचंदजी केशरीमलजी बागरेचा —दहिवद
११ श्रीमती गुप्तदानी एक महिला —धरणगांव
११-०० श्रीमान् माणकचांदजी झाँबड की ध. प. सौ. प्यारीबाई —करजगांव
११-०० श्रीमान् इन्दरचंदजी काँकरिया की ध. प. सौ. सुन्दरबाई —ताहाराबाद
११-०० श्रीमान् मोतीलालजी काँकरिया की ध. प. सौ. रतनबाई —ताहाराबाद

११·०० श्रीमान् बंसीलालजी छाजेड़ की ध. प. सौ. निम्बीबाई
-ताहाराबाद

५·०० श्रीमान् इंदरचंदजी कांकरिया की ध प. सौ. सुशीलाबाई
-ताहाराबाद

५·०० श्रीमान् मोतीलालजी काँकरिया की माताजी -ताहाराबाद

२·०० श्रीमान् दामोदर पाठक की ध. प. सौ. सत्यमूबाई
-ताहाराबाद

२·०० श्रीमान् छबिलदासजी छाजेड़ की ध. प. सौ. पतासाबाई
-नीमगांव

२·०० श्रीमान् माणकचंदजी काँकरिया की ध. प. सौ. सुपडीबाई
-ताहाराबाद

१·०० श्रीमती कृष्णाबाई बीड -ताहाराबाद

११·०० स्व० श्री मिश्रीलालजी राँका की ध. प. श्रीमती चम्पाबाई
-ताहाराबाद

११·०० श्रीमान् गणेशमलजी फुत्तचंदजी बाफणा तेलेके निमित्त
-पिंगलवाड़ा

११-श्रीमान् शान्तिलालजी राँका की ध. प. सौ. प्रमिलाबाई
-सटाणा

११·०० श्रीमान् नैनसुखजी उत्तमचन्दजी बुरड -ब्राह्मणगाव

मैं श्री अमोल जैन ज्ञानालय की ओर से उपर्युक्त सभी दानवीरों का हार्दिक-आभार मानता हूँ।

[सूचनाः—स्मरण रहे कि उपलब्ध आर्थिक-सहायता के अतिरिक्त होने वाला खर्च संस्था ने उठाया है।]

गली नं. २
धूलिया

—कन्हैयालाल छाजेड़
मन्त्री, श्री अमोल जैन ज्ञानालय

सम्पादक की कलम से

कथाएँ प्राचीनकाल से दुनिया में लोकप्रिय रही हैं और इसमें कोई सन्देह नहीं कि मानव जीवन की उन्नति में उनसे बहुत बड़ा सहयोग मिला है।

कुछ कथाएँ ऐतिहासिक होती हैं और कुछ कल्पित; किन्तु होती हैं दोनों ही शिक्षाप्रद। इसलिए दोनों का उपयोगिता की दृष्टि से महत्त्व एक-सा है।

कल्पित कथाएँ तो रची ही इसलिए जाती हैं कि उनसे आध्यात्मिक-शिक्षा मिले; किन्तु बहुत-से विचारक ऐतिहासिक कथाओं में भी आध्यात्मिक-रहस्य ढूँढ निकालते हैं; अध्यात्म-रामायण, पद्मावत आदि इस बात को प्रमाणित करते हैं। "पद्मावत" की कथा आधी ऐतिहासिक है और आधी कल्पित; किन्तु उस महाकाव्य के रचयिता महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी ने अन्त में कुछ पद्यों के द्वारा उस कथा का स्वयं ही रूपक स्पष्ट करके यह सिद्ध कर दिया है कि आध्यात्मिक रहस्य प्रकट करने के लिए ही वह ग्रन्थ रचा गया है, केवल मनोरंजन के लिए नहीं!

आध्यात्मिक रहस्य

कलम घसीटते हुए मुझे इस पुस्तक की कथा में भी एक विचित्र रहस्य मालूम हुआ है, जिसे प्रकाशित करने से पहले मैं यह खुलासा कर देना चाहता हूं कि ऐसा करके मैं इस कथा की ऐतिहासिकता से असहमति प्रकट करने की चेष्टा नहीं कर रहा हूँ। मेरा आशय तो सिर्फ यही है कि साधारण कथा से नैतिक-

शिक्षा का जो कुछ लाभ मिल सकता है, उसकी अपेक्षा आध्यात्मिक-रहस्य जानकर (इसी कथा से) अधिक लाभ और आनन्द उठाया जाय !

हाँ, तो अब जरा सावधानी से पढ़िये। आध्यात्मिक-रहस्य और शब्द कोष्ठक में लिखे जा रहे हैं:—

सबसे पहले शिशुपाल (अभिमान) रुक्म (क्रोध) के निमन्त्रण पर रुक्मिणी (बुद्धि) को अपनी बनाने के लिए आता है। रुक्मिणी (बुद्धि) के पिता भीम (विवेक) श्रीकृष्ण (चैतन्य) को चुनने का प्रस्ताव रखते हैं, किन्तु रुक्म (क्रोध) के विरोध करने पर भीम (विवेक) तटस्थ हो जाते हैं।

अपने पिता (विवेक) की बात न मानने वाले बेटे (क्रोध) के पक्ष में रहकर महारानी शिखावती (ममता) भी पति के विरुद्ध (विवेक शून्य) हो जाने से आखिर पछताती है। शिशुपाल (अभिमान) भी भौजाई (भलाई) की सलाह न मानने से अंत में बुरी तरह पछताता है।

रुक्मिणी (बुद्धि) अपने पिता (विवेक) के प्रस्ताव के अनुसार श्रीकृष्ण (चैतन्य) को ही अपना वर चुनने का प्रण करती है और उसमें दृढ़ रहकर सफलता भी पा जाती है। उसे अपने प्रण से डिगाने के लिए शिखावती (ममता), रुक्म (क्रोध), शिशुपाल (अभिमान) की दूतियों (दुर्वृत्तियों) आदि के द्वारा किये गये सारे प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं।

रुक्मिणी (बुद्धि) को श्रीकृष्ण (चैतन्य) के निकट पहुंचाने का प्रयत्न करने वाली भूआ (माया) भी शुरू में शिखावती (ममता) की फटकार भले ही खाये, अन्त में तो सबसे प्रशंसनीय ही बनती है।

आखिर यज्ञ मन्दिर (शरीर) में जब रुक्मिणी (बुद्धि) का श्रीकृष्ण (चैतन्य) से मिलाप होता है, तो महाराज भीम (विवेक) प्रसन्न हो जाते हैं; किन्तु रुक्म (क्रोध), शिशुपाल (अभिमान) आदि के मन में खलबली होने लगती हैं। नारद (कलह प्रेमी) भला ऐसा अवसर कहां चूकने वाले थे? उनकी बातें सुनकर श्रीकृष्ण (चैतन्य) को युद्ध करना ही पड़ा।

परन्तु युद्ध करने से पहले रुक्मिणी (बुद्धि) श्रीकृष्ण (चैतन्य) से ऐसा वचन ले लेती है कि वे रुक्म (क्रोध) को जान से न मारें (सर्वथा नष्ट न करें), सिर्फ अपमानित ही करें, जिससे कि उसे अपने किये पर पछतावा हो और वह फिर से अपने पिता (विवेक) का आज्ञाकारी बन जाय ! [आशय यह है, कि विवेक-शून्य क्रोध ही दुष्ट है--वध्य है; विवेक के अँकुश में रहने वाला क्रोध तो जोश है उमंग है, पराक्रम है, इस क्रोध को विवेक के अंकुश में रखने की जरूरत है, उसे सर्वथा नष्ट करने की नहीं।]

युद्ध करते समय श्रीकृष्ण (चैतन्य) को बलभद्र (शुद्ध मन) ने कहा कि शिशुपाल (अभिमान) भी यदि दूसरों को सताये नहीं अपराध न करे तो (स्वाभिमान या आत्म गौरव का रूप पा जाता है, इसलिए वह भी) सर्वथा वध्य नहीं है !

अन्त में श्रीकृष्ण (चैतन्य) की विजय होती है और वे रुक्मिणी (बुद्धि) के साथ सानन्द अपने निवास को लौट आते हैं। यह है इस कथा का संक्षिप्त आध्यात्मिक रहस्य। अधिक गहराई से सोचने पर विचारकों को और भी अनेक रहस्य मालूम हो सकते हैं।

जीवनी-सम्बन्धी

रुक्मिणी चरित्र पर अनेक कवियों ने अपनी कलम चलाई

है। रुक्मिणी परिणय, रुक्मिणी-मंगल, रुक्मिणी-विवाह आदि संस्कृत-हिन्दी के अनेक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इन नामों से भी प्रकट होता है कि रुक्मिणी की शादी कैसे और किसके साथ हुई? इस बात का ही इन ग्रन्थों में वर्णन होना चाहिये। बात भी सच है। इस पुस्तक में भी रुक्मिणी के विवाह के प्रस्ताव से ही कथा शुरू होती है और ठेठ २६ वें प्रकरण में उसका विवाह हो पाता है! २७ वें प्रकरण में दीक्षा लेकर वह आत्म साधना में तल्लीन हो जाती है।

काफी छोटी होते हुए भी बीच-बीच में संवादों के बाहुल्य से यह कथा इतनी लम्बी हो गई है कि इस पर पंडित मुनि श्री कल्याण ऋषिजी म० सा० को कुल ७३ प्रवचन करने पड़े और उनको व्यवस्थित रूप से सम्पादित करते समय संक्षिप्त करने का बहुत-कुछ ध्यान रखते हुए भी मुझे सत्ताईस प्रकरण लिखने पड़े। मल्लीजिन, मदनरेखा और श्रीमती के बाद पं० मुनि श्री के प्रवचनों की यह चौथी पुस्तक है।

"मदन रेखा" के सारे प्रकरणों का प्रारम्भ "म" अक्षर से और "श्रीमती" के सारे प्रकरणों का प्रारम्भ जैसे "श" अक्षर से किया गया है, वैसे ही इस पुस्तक के भी सभी प्रकरणों का प्रारम्भ "क" इस अक्षर से किया गया है; क्यों कि इस कथा की घटनाओं का केन्द्र कुन्दनपुर है।

सीखने योग्य

राजकन्या रुक्मिणी इस कथा की प्रधान नायिका है। उसकी जीवनी से अनेक बातें सीखने योग्य मिलती हैं। अपने पक्ष पर दृढ़ रहने का सामर्थ्य, कन्या के न्यायोचित अधिकारों को

सुरक्षित रखने का भान कराने के लिए आत्म बलिदान तक कर डालने का संकल्प, शीलधर्म के विरुद्ध सलाह देने वाले कुटुम्बियों को भी मुँह तोड़ उत्तर देने का साहस, पितृवंश की रक्षा के लिए अपने अपकारी भाई का भी वध न करने का वचन लेने की समयज्ञता, बन्धन में पड़े हुए अपराधी भाई पर भी करुणा लाकर उसे छुड़ाने का प्रयत्न करने की हार्दिक सहानुभूति, अपने सेवा आदि गुणों के द्वारा सौतों को भी वश में करने की कुशलता और अन्त में सब कुछ त्याग कर संयमी जीवन स्वीकार करने की सफल चेष्टा आदि बातें महिलाओं के लिए आदर्श हैं।

परन्तु उपर्युक्त सारी विशेषताओं के मूल में है शील सम्पन्नता, जिस पर आकृष्ट होकर श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को अपनी सहधर्मिणी के रूप में स्वीकार किया था। जैसा कि संस्कृत के एक कवि ने कहा है:—

"सम्पन्न रमणी शीलसम्पन्नरमणीं विना।
इत्यूढवान्नरमणी, रमणीं रुक्मिणीं हरिः॥"

—सुभाषितरत्न भाण्डागार

[अर्थात् शीलवती नारी के बिना सम्पत्ति की शोभा नहीं यही सोचकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ने नारी रुक्मिणी से विवाह किया]

क्या ही सुन्दर श्लोक है! कवि ने इसमें उसकी शील सम्पन्नता पर ही जोर दिया है। यह गुण सभी महिलाओं के लिए अनुकरणीय है, पुरुषों के लिए भी।

उपसंहार

अन्त में कहना है, कि मैं तो सिर्फ परोसने वाला हूँ। माल सारा पण्डित मुनिश्री का है। परोसने की कला में मुझे कहाँ तक सफलता मिल पाई है ? इसका निर्णय पाठक करें।

हाँ, एक बात यह भी निवेदन कर देना जरूरी है कि जैन साधुओं की भाषा काफी संयत होती है, इसलिए सावधानी रखने पर भी यदि कहीं वैसी भाषा का ठीक ढंग से निर्वाह नहीं हो पाया हो, तो इसे मेरी त्रुटि समझें, प्रवचनकार को नहीं। इति शम् ॥

जन्म स्थल:—
बड़ी सादड़ी (राजस्थान)
दिनांक ५ सितम्बर १९५८

शान्तप्रकाश "सत्यदास"
(काव्यतीर्थ—साहित्य विशारद)

कृतज्ञता-ज्ञापन

प्रिय पाठक गण !

आप जो चित्र देख रहे हैं वह केवल एक बालक का चित्र ही नहीं है अपितु वह मानव जीवन की चंचलता का सजीव चित्र है। यह अबोध बालक आठ वर्ष की छोटीसी जिन्दगी में क्रूर काल का ग्रास बन कर परलोक की महायात्रा पर चल पड़ा, क्या यह घटना संसार के मायाजाल में आकण्ठ डूबे हुए मानवी को सचेत एवं सजग करने के लिए पर्याप्त नहीं है ? ओह ! कितना क्षण भंगुर है यह जीवन !

इस क्षणभंगुर जीवन की सार्थकता इसी में है कि इसमें ऐसी साधना की जाय कि जिससे क्षणभंगुरता मिटकर शाश्वत जीवन की प्राप्ति हो।

यह चित्र स्वर्गीय कु. दीपचंद का है। इसका जन्म सं. २००७ (शके १८७२) ज्येष्ठ कृष्ण ११ को हुआ था। नासिक निवासी श्रीमान् नगराजजी सा० पारख के सुपुत्र श्री नेमिचंदजी सा० पारख का यह होनहार सुपुत्र था। श्रीमती गजराबाई की कूंख से इस बालक का जन्म हुआ था। बाल सुलभ लीलाओं द्वारा यह अपने कुटुम्बी जनों को उल्लसित और प्रफुल्ल करता था।
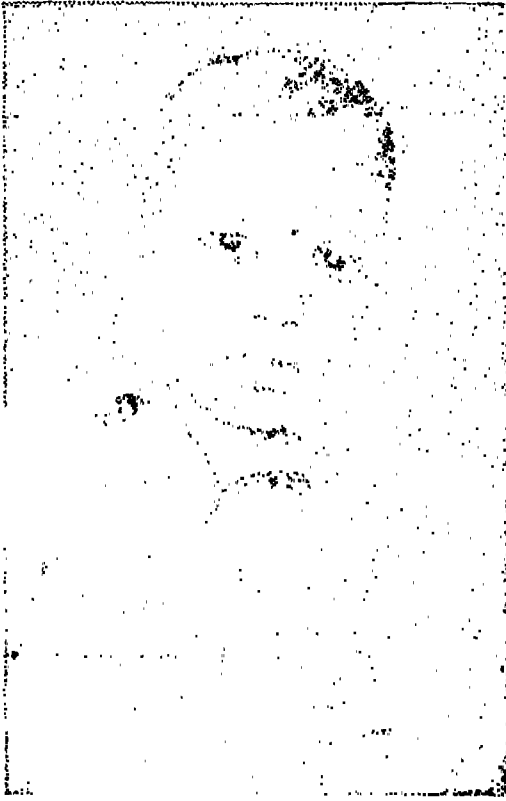
स्व० कुँ० श्री दीपचन्द पारख, नासिक.

जन्म संवत २००७ मृत्यु संवत २०१५

संसार के जीवों को अनित्यता का पाठ पढ़ाने के लिए यह बालक आठ वर्ष की छोटी अवस्था में शके १८८० दि० १५-८-५८ शुक्रवार को सहसा इस दुनिया से चल बसा इसके माता-पिता पर शोक का पहाड़ टूट पड़ा। किन्तु भवितव्यता पर किसका जोर चल सकता है। केवल संत समागम और सात्विक साहित्य ही ऐसे प्रसंग पर शान्ति के अवलम्बन हुआ करते हैं। अतएव इस बालक की स्मृति को बनाये रखने हेतु श्रीमान् नेमिचंदजी सा० पारख ने श्री अमोल जैन ज्ञानालय, धूलिया द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक के प्रकाशन में रु. २०१) की उदार सहायता प्रदान की है। एतदर्थ मैं ज्ञानालय की ओर से आपका हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

गली नं. २ }
धूलिया }

—कन्हैयालाल छाजेड़
मन्त्री, श्री अमोल जैन ज्ञानालय

कहाँ क्या है ?

महासती रुक्मणी

१-परिचय

था प्रारम्भ करने से पहले पात्रों का परिचय जान लेना ज़रूरी होता है।

विन्ध्याचल पर्वत से दक्षिण की ओर विदर्भ (बरार) नामक देश है। उस में किसी समय कुन्दनपुर नामक एक शहर था, जिसमें रहने वाली प्रजा बड़ी सुखी थी।

प्रजा के सुख का सम्बन्ध उसके शासक की योग्यता से है। यदि सुयोग्य शासक न हो तो प्रजाजन आपस में ही लड़ मरें। यदि ग्वाला न हो तो पशु ऊधम मचाने लग जायँ,

खेत ही चरने लग जायँ और प्रजा को भूखों मरने की नौबत आ जाय !

यदि थोड़ा गहराई से विचार किया जाय तो मालूम होगा कि मनुष्य अनेक बातों में पशु से भी गया बीता है। पशु धन का संग्रह नहीं करता, मनुष्य करता है ! पशु झूठ नहीं बोलता, मनुष्य बोलता है ! पशु चोरी नहीं करता, मनुष्य करता है ! इतना अन्तर होते हुए भी पशुओं के लिए जब ग्वाले की ज़रूरत रह ही जाती है, तब उन मनुष्यों के लिए जो पशुओं से भी कई बातों में गये बीते हैं-शासक की आवश्यकता क्यों न रहेगी ?

कुन्दनपुर के शासक महाराज भीम थे, जो अनुभवी कुशल राजनीतिज्ञ मतिसागर नामक मन्त्री की सलाह से प्रजा का न्यायपूर्वक रक्षण करते थे।

जिस राजा की प्रजा दुःखी होती है, वह अवश्य नरक में जाता है ! ऐसा सन्त तुलसीदास ने कहा है। उनके शब्द ये हैं:—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी ।
सो नृप अवस नरक अधिकारी ॥

प्रजा दुःखी होती है--चौरों से, डाकुओं से, गुण्डों से। प्रजा से टेक्स वसूल करके बदले में राजा को चाहिए कि वह हर--तरह के उपद्रव से प्रजा की रक्षा करे ! अन्यथा परिणाम भयंकर होता है। जैसा कि एक नीतिकार ने कहा है:—

राजा गृण्हन् करं पृथ्व्या, रक्षेच्चौराद्युपद्रवम् ।
चौरादीनां हि पापेन, लिप्येत स्वयमन्यथा ॥ १ ॥

—हेमचन्द्राचार्य

अर्थात् टेक्स वसूल करने वाले राजा का यह कर्त्तव्य है, कि चौरादि के उपद्रव से प्रजा की रक्षा करे। यदि ऐसा नहीं करता, तो चौरों के पाप से राजा स्वयं ही लिप्त होता है।

महाराज भीम इस बात को खूब समझते थे—इसलिए बड़ी सावधानी से प्रजा की सेवा में लगे रहते थे। वे कभी चिन्तित या उदास रहते तो केवल प्रजा के ही लिए, अपने लिए नहीं। जैसा कि किसी चारण (भाट) ने अपने राजा की प्रशस्ति में कहा है:—

स्वसुख-निरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव ।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णम्
शमयति-परितापं छायया संश्रितानाम् ॥२॥

—अभिज्ञान शाकुन्तल ५।७

अर्थात् हे राजन्! अपने सुख की इच्छा से रहित बन कर आप प्रतिदिन प्रजा के लिए खिन्न (उदास) रहते हैं—आपका यह स्वभाव ही है, जैसा उस पेड़ का है, जो अपने सिर पर तेज धूप को सहन करके भी आश्रितजनों के सन्ताप को अपनी छाया से शान्त करता है।

'भीम' शब्द का अर्थ भयंकर होता है। महाराज भीम भी बड़े भयंकर थे! किन्तु सिर्फ अत्याचारियों के लिए, सदाचारियों के लिए नहीं—दुर्जनों के लिए, सज्जनों के लिए नहीं—चौरों के लिए, साहूकारों के लिए नहीं।

मतिसागर नामक महाराज भीम का मन्त्री भी अपने नाम के ही अनुसार बुद्धि का समुद्र था। उसमें मन्त्री के योग्य सारे गुण

थे। विशाल-भवन जैसे अपनी दीवारों के आधार पर टिकता है, वैसे ही राज्य मन्त्रियों के आधार पर टिका रहता है। एक नीतिकार ने खम्भों से मन्त्री की तुलना करते हुए क्या ही सुन्दर कहा है:—

अन्तःसारैरकुटिलैरच्छिद्रैः सुपरीक्षितैः ।
मंत्रिभिर्धार्यते राज्यं, सुस्तम्भैरिव मंदिरम् ॥२॥
—पञ्चतन्त्रम्

अर्थात् अन्तःसार (ठोस) अकुटिल (सरल या सीधे) अच्छिद्र (जिन में कोई छेद न हो या दोष न हो) सुपरीक्षित (जिनकी अच्छी तरह से जाँच कर ली गई हो) ऐसे अच्छे स्तम्भों (खम्भों) के समान मन्त्रियों के द्वारा मन्दिर के समान राज्य धारण किया जाता है। आशय यह है, कि मन्दिर को टिकाये रखने के लिए जैसे अच्छे खम्भों की आवश्यकता रहती है, वैसे ही राज्य को टिकाये रखने के लिए अच्छे मन्त्रियों की आवश्यकता रहती है।

महाराज भीम की रानी का नाम शिखावती था, जिसकी कुक्षि से उन्हें पाँच पुत्र और एक कन्या की प्राप्ति हुई थी। इसी कन्या का नाम रुक्मिणी था, जो इस कथा की प्रधान नायिका है।

रुक्मिणी में सौन्दर्य तो इतना अधिक था कि उस समय में उससे बढ़ कर सौन्दर्य किसी अन्य कन्या में होगा—ऐसी कल्पना तक नहीं की जा सकती थी! उसका मुखमण्डल चन्द्रमा के समान आल्हाददायक था-नील कमल के समान उसके नेत्र थे-कमल के समान ही उसके सारे अंगोपांग कोमल थे। पूर्व-जन्म के संचित पुण्य के कारण ही उसे ऐसे अनुपम, अद्भुत और अद्वितीय लावण्य की प्राप्ति हुई थी।

उसमें सिर्फ सौन्दर्य का ही एक गुण था, सो बात नहीं, दूसरे भी अनेक गुण थे। वह सरला (निष्कपट) गुणग्राहिका, दयालु, विनीता, परिश्रमी और सेवाभाविनी थी।

रुक्मिणी के पाँच भाइयों में से सबसे बड़े भाई का नाम रुक्मकुमार था। इस प्रकार दोनों के नाम भले ही मिलते-जुलते मालूम होते हों, किन्तु गुण एक-दूसरे के विरुद्ध थे। दूसरे शब्दों में यों भी कहा जा सकता है कि रुक्मिणी में जितने अधिक गुण थे, रुक्मकुमार में उतने ही अधिक दुर्गुण थे। वह बड़ा अविनीत और उद्दण्ड था। उसे युवराजपद दिया गया था, इसलिए कुछ सत्ता हाथ में आ जाने से वह अभिमानी भी बन गया था। सन्त तुलसीदास ने कहा था:—

'तुलसी' कहु अस को जग माँहीं।
प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं ॥

अर्थात् दुनिया में ऐसा कौन व्यक्ति है, कि प्रभुता (सत्ता) पा कर भी जिसे घमण्ड न हो? इसके अपवाद कोई विरले ही महापुरुष होते हैं, रुक्मकुमार जैसे नहीं।

रुक्मिणी धीरे-धीरे बड़ी होती जा रही थी। सूर्योदय से जैसे कमल खिलने लगता है, वैसे ही तारुण्य से उसका सौन्दर्य अधिक से अधिक खिलने लगा।

उधर यह सब देख कर महाराज को उसकी शादी करने का विचार आने लगा। घोड़ा जब जवान हो जाय, तो उसे बन्धन में डाला जाता है; वैसे ही कन्या भी जब जवानी में प्रवेश कर जाय, तो उसे विवाह के बन्धन में डाल दिया जाता है।

एक दिन महाराज ने महारानी से कहा:—"देखती हो रानी ! रुक्मिणी किशोरी से तरुणी बन गई है। उसके लिए अब शीघ्र ही कोई वर ढूँढना चाहिये।"

महारानी:—"जरूर ढूँढना चाहिये। मैं भी कई दिनों से विचार कर रही थी कि वर ढूँढने की बात आपसे कहूँ, पर कह नहीं पाई और आज आपने स्वयं ही उस बात को छेड़ दी है। यह बात तो मुझे आपसे कहनी चाहिये थी; क्योंकि वर ढूँढने का काम पिता का है, माता का नहीं।"

महाराज:—"तुम ठीक ही कह रही हो। यह काम मेरा है, किन्तु मैं चाहता हूँ कि इस विषय में मन्त्री, पुरोहित आदि तथा अग्रगण्य अनुभवी नागरिकों की भी सलाह ली जाय तो ठीक रहेगा। क्यों ?"

महारानी:—"हाँ-हाँ, ठीक है। राय जरूर लेनी चाहिये। आप इसके लिए कल ही एक बैठक बुला लीजिये; जिसमें खास-खास लोगों को निमन्त्रित किया जाय।"

महाराज ने वैसा करने का आश्वासन दे दिया।

२-प्रारम्भ

ल के प्रवचन में कथा के पात्रों का परिचय दिया गया था। शिशुपाल, कृष्ण, नारद, बलभद्र आदि भी कुछ पात्र इस कथा में आते हैं, किन्तु ये पात्र इतने प्रसिद्ध हैं कि उनका परिचय देने की आवश्यकता ही नहीं मालूम होती। दूसरी बात यही यह भी कही जा सकती है, कि इनका परिचय प्रसंगानुसार कथा के बीच में मिल ही जायगा-इसीलिए कल इन पात्रों का परिचय नहीं दिया गया। अब कथा प्रारम्भ की जाती है।

दूसरे दिन महाराज भीम की राजसभा विशेष ढंग से सजाई गई थी, जिसमें मन्त्री, पुरोहित, पाँचों राजकुमार, महारानी तथा नगर के अनुभवी और प्रतिष्ठित नागरिक भी महाराज का निमंत्रण पाकर सम्मिलित हो गये थे। उसमें बहुत-से कवि और कलाकार भी एकत्रित हुए थे। एक कवि ने राजसभा को इन्द्रसभा से भी बढ़ कर बताया है। उसके शब्द ये हैं:—

गुरुरेकः कविरेकः, सदसि मघोनः कलाधरोऽप्येकः।
अद्भुतमत्र सभायां, गुरवः कवयः कलाधराः सर्वे ॥४॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार

अर्थात् इन्द्र-सभा में गुरु (वृहस्पति) एक है, कवि (शुक्राचार्य) एक है और कलाधर (चन्द्र) भी एक ही है; किन्तु

आश्चर्य की बात यह है, कि इस राजसभा में सभी गुरु हैं, कवि हैं और कलाधर हैं (कलाकार हैं)।

इस प्रकार की भरी हुई विशाल सभा में सोने के सिंहासन पर बैठे हुए महाराज भीम ने गम्भीर वाणी में यों कहना शुरू किया:—

"सभासदो !

आज आपको एक महत्त्वपूर्ण कार्य के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने के लिए यहाँ आमन्त्रित किया गया है। विशाल सड़क पर कोई कैसे भी चले, किन्तु सँकड़े पुल पर चलते समय काफी सावधानी की जरूरत रहती है। जीवन में लग्न का प्रसंग भी सँकड़े पुल के समान है, जरा-भी चूके कि गिरे !

लग्न का अर्थ है:—लगना, संलग्न होना या मिलना। समान गुण वाले ही आपस में मिल सकते हैं। पानी में पानी मिल सकता है, पानी में तेल नहीं।

लग्न को "पाणिग्रहण" भी कहा जाता है। पाणि का अर्थ हाथ है, इसलिए पाणिग्रहण का अर्थ होता है—*हस्तमिलाप।

---

* पाश्चात्य देशों में हस्तमिलाप (शेक हैन्ड) मित्रता का सूचक समझा जाता है। पढे-लिखे भारतीय लोगों में भी इसका तेजी से प्रसार होता जा रहा है। मित्रता को सूचित करने के लिए स्त्री-पुरुष ही नहीं, पुरुष-पुरुष भी हाथ मिलाते हैं। बहुत-से लोग समझने लगे हैं कि भारत के लिए यह प्रथा नई है, किन्तु "पाणिग्रहण" के रूप में काफी प्राचीनकाल से हमारे यहाँ यह प्रथा चली आ रही है। यह बात दूसरी है कि उसका प्रयोग वर-कन्या के विवाह तक ही सीमित रहा है !

—सम्पादक

जिस किसी से हाथ मिलाया जाता है, जीवन-भर उसके प्रति दिल को सदा साफ रखा जाता है। जिनका दिल सरल हो, साफ हो, उन्हीं का दिल परस्पर मिल सकता है। पाणिग्रहण-संस्कार के लिए भी ऐसे ही सुयोग्य पात्र का चुनाव करना जरूरी है।

लग्न के लिए विवाह शब्द भी प्रचलित है। विवाह का अर्थ है:—विशेष जिम्मेदारी का वहन करना। विवाह के बाद वर और कन्या इन दोनों पर विशेष प्रकार की जिम्मेदारी आ पड़ती है; जो इस जिम्मेदारी को ठीक ढंग से निभा सकें, उन्हीं का वैवाहिक-जीवन सफल माना जाता है।

लोहे की अंगूठी में सवा लाख का हीरा जड़वा दिया जाय तो सुशोभित न होगा-न उसका कोई मूल्य ही समझेगा। बहुमूल्य हीरा तो कुन्दन की अंगूठी में ही शोभा पाता है। ठीक इसी प्रकार राजकन्या रुक्मिणी के लिए भी हीरे के समान उत्तम वर की खोज करना है। जिसका कुल, पराक्रम, वैभव, स्वास्थ्य और शील उत्तम हो, वैसा [1]वर आपकी दृष्टि में कौन है? सुझाव दीजिये!"

यह सुन कर सभासदों के संकेत को समझ कर मन्त्री ने महाराज से निवेदन किया:—"राजन्! पहले आप ही अपने विचार प्रकट कर दीजिये, जिससे हमें मालूम हो जाय कि राजकुमारीजी के लिए आपके विचारों में कौन-सा वर योग्य है। इसके बाद हम अपनी राय प्रकट करेंगे।

[1]वर और कन्या में "सत्येश्वरगीता" के अनुसार निम्नलिखित सोलह गुणों का मिलान करना चाहिये:—

"सदाचार" सत्संग वय, भोजन एक विचार।
सहाजीविका स्वास्थ्य धन, शिक्षण, शिष्टाचार॥
सह-भाषा सौन्दर्य गृह, पथ, कर्मठता चाह।
जहाँ रहें अनुकूल ये, करना वहां विवाह॥"—सम्पादक

उचित होती तो मैं अवश्य स्वीकार करता। भरी-सभा में विरोध करके इसने जो मेरा अपमान किया है, वह कितना अक्षन्तव्य है? युवराजपद के घमण्ड में आकर यह जब इतना अविनीत हो सकता है, तो राजसिंहासन पा कर न मालूम क्या करेगा?
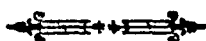
३-प्रस्ताव का अनौचित्य

एकटु वचन सुन कर भी महाराज भीम ने मन-ही-मन अपने गुस्से को दबा कर सोचा कि भरी-सभा में मेरे प्रस्ताव को अनुचित कहने का जो रुक्म ने साहस किया है, सो पहले सुन तो लूँ कि वह कहना क्या चाहता है ? नीतिकारों ने कहा है:—

"परो अपावन ठौर में, कंचन तजै न कोय।"

यदि अपवित्र स्थान में भी कंचन पड़ा हो, तो उसे कोई नहीं छोड़ता। कीचड़ में या गटर में भी यदि फँसा हुआ रुपया दिखाई दे जाय तो उसे कौन उठाना न चाहेगा ? सराफ की दूकान पर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही नहीं, शूद्र भी यदि सोना ले जाय तो सराफ ले लेगा। असली सोना बालक से भी ले लेगा और नकली सोना हुआ, तो बूढ़े से भी नहीं लेगा। नीतिकार कहते हैं:—

"बालादपि सुभाषितम्॥"

बच्चे से भी अच्छी बात स्वीकार करनी चाहिये। मुझे भी रुक्म की बात सुन लेनी चाहिये, जिससे कि उसके विरोध का कारण मालूम हो सके। सुने बिना उसका हृदय नहीं मालूम हो सकता ! फिर पूछा:—

"राजकुमार ! मैंने जो प्रस्ताव सभा में पेश किया है, यदि तुम सचमुच उसे अनुचित ही समझते हो तो उसकी अनुचितता के कारण भी बताने होंगे !" सिर्फ अनुचित कह देने से ही कोई बात

सिद्ध नहीं हो जाती। सब लोगों ने उसका समर्थन किया है, इसलिए सभी सुनना चाहते हैं कि अनुचितता के कारण क्या-क्या हैं ?"

महाराज भीम की इस बात को सुन कर रुक्म ने क्या कहा—यह सुनाने से पहले एक बात मैं आप से पूछना चाहता हूँ कि विरोध किसका किया जाता है—ज्ञानी का या अज्ञानी का ?

ज्ञानी का तो विरोध किया नहीं जा सकता, क्योंकि वह अपनी बात काफी सोच-समझ कर प्रकट करता है और यदि आप कहें कि अज्ञानी का विरोध किया जाता है, तो फिर यहाँ रुक्म की अपेक्षा महाराज भीम को अधिक अज्ञानी मानना पड़ेगा कि जो काफी अनुभवी और समझदार हैं। अथवा श्रीकृष्ण को अज्ञानी मानना पड़ेगा, क्योंकि रुक्म उनका विरोध कर रहा है ! इसलिए जरा विचार करके उत्तर दीजिये कि विरोध ज्ञानी का किया जाता है या अज्ञानी का ?

(मिनिट-भर मौन रह कर) क्यों आप सब लोग चुप क्यों होगये ? प्रश्न कुछ टेढ़ा मालूम होता है—कठिन मालूम होता है—किन्तु सिद्धान्त के जानकार के लिए यह प्रश्न काफी सरल है। ऐसे प्रश्नों का उत्तर महावीर के द्वारा बताये गये अनेकान्त की सहायता के बिना नहीं दिया जा सकता। यहाँ अनेकान्त सिद्धान्त का विवेचन करके मैं चालू कथानक को नीरस बनाना नहीं चाहता !

हाँ, तो सामने आये हुए प्रश्न के उत्तर में कहना है कि जो समझदार हैं, वे न ज्ञानी का विरोध करते हैं और न अज्ञानी का। ज्ञानी की बात तो उन्हें समझ में आ जाती है इसलिए उसके विरोध का तो सवाल ही नहीं उठता और अज्ञानी को दयनीय या उपेक्षणीय समझते हैं। वे समझते हैं, कि अज्ञानी का विरोध

करना व्यर्थ है, क्योंकि समझाने पर भी वह मानेगा नहीं। कहा भी है:—

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो
नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ।
व्याधिर्भेषजसङ्ग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषम्
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्॥५॥

—भर्तृहरिसुभाषितसंग्रहः

अर्थात् पानी से अग्नि बुझाई जा सकती है, छाते से धूप को रोका जा सकता है, तीखे अंकुश से मदोन्मत्त हाथी को वश में किया जा सकता है, डंडे से बैल और गधे को भगाया जा सकता है, विभिन्न दवाओं के प्रयोग से रोग का नाश किया जा सकता है, मन्त्र प्रयोग से जहर का प्रभाव हटाया जा सकता है—इस प्रकार शास्त्रों में सबके लिए औषध का विधान है, किन्तु मूर्ख के लिए कोई औषध नहीं। आशय यह है कि, मूर्ख को समझाया नहीं जा सकता। इस प्रकार जो कार्य हो नहीं सकता, उसे कोई करे ही क्यों? किसी कवि ने ठीक ही कहा है:—

"ऊसर धरती देख बीज ना बोइये।
मूरख ने समझाय ज्ञान ना खोइये॥"

ऊसर धरती (बंजर भूमि) में बीज बोना जैसे व्यर्थ है, वैसे ही मूर्ख को समझाना भी व्यर्थ है।

प्रश्न का उत्तर दूसरे ढंग से यों दिया जायगा कि जो समझदार नहीं है-मूर्ख है, वह ज्ञानी का भी विरोध करता है और अज्ञानी का भी।

मूर्ख अपने आप को सबसे बड़ा ज्ञानी समझता है; उसे यह बात सहन नहीं होती कि उससे भी बढ़ कर कोई दूसरा ज्ञानी हो सकता है, इसलिए जब उसे कोई ज्ञानी दिखाई देता है, तो उसमें वह दोष ढूँढता है और उन्हें बता कर जनता की नजरों में ज्ञानी को नीचे गिराने की कोशिश करता है, जिससे कि उसका अपना महत्त्व चमकने लगे। दूसरों के दोष ढूँढने में उसे एक प्रकार का आनन्द आता है, इसलिए छोटे-छोटे दोष भी बड़ी पैनी दृष्टि से देखता है, किन्तु आश्चर्य यह है कि वह अपने खुद के दोष नहीं देख पाता! जैसा कि नीतिकार कहते हैं:—

खलः सर्षपमात्राणि, परच्छिद्राणि पश्यति ।
आत्मनो बिल्वमात्राणि, पश्यन्नपि न पश्यति ॥ ६ ॥

—महाभारत

दुष्ट सरसों के बराबर छोटे-छोटे भी परच्छिद्र (दूसरों की भूलें) देखता है, किन्तु बिल्वफल के समान बड़े-बड़े अपने दोष देखते हुए भी नहीं देख पाता! दूसरों के दोष ढूँढने की धुन में उसे अपने दोष देखने की फुरसत ही कहाँ?

तो इस प्रकार मूर्ख ज्ञानी का विरोध करता है और अज्ञानी का विरोध तो इसलिए करता है कि वह तो उसके समान ही है। कुत्ता कुत्ते को भौंकते हुए देख कर चुप नहीं रह सकता!

यहाँ पुत्र पिता का विरोध कर रहा है। रुक्म कैसा है? सो पहले कहा जा चुका है; वह वयोवृद्ध अनुभवी महाराज भीम के प्रस्ताव का कड़े शब्दों में विरोध करते हुए कह रहा है:—

"राजन्! आपने जिस कृष्ण की इतनी प्रशंसा की है, वह एक ग्वाला है, जो ग्वाल-बाल के साथ खेला करता है-गोपियों के साथ नाचा करता है-दिन भर बाँसुरी बजाया करता है-नटखट

ाड़कों के साथ चुरा-चुरा कर माखन खाया करता है ! इस प्रकार ोलने कूदने, नाचने-बजाने और चोरी करने की योग्यता वाले ाधारण आदमी के साथ मैं अपनी बहिन की शादी नहीं होने दूंगा !

एक ओर विद्या में सरस्वती, शक्ति में पार्वती और सौन्दर्य ां लक्ष्मी के समान राज-कन्या रुक्मिणी है ! और दूसरी तरफ ाुणहीन ग्वाला--कीचड़ या कौए के समान काला--कलूटा कृष्ण ह ! कहाँ राजाभोज और कहाँ गाँगू तेली ? ऐसा अनमेल संबंध करने से दुनिया हमारी हँसी न उड़ायगी ? आशा है, मेरी बातों से आपको और सभासदों को प्रस्ताव की अनुचितता के कारण समझ में आ गये होंगे !"

यह सुनकर महाराज भीम ने कहा:—"तुम भूलते हो कुमार ! दुनिया में एकान्त निर्दोष व्यक्ति कोई नहीं हो सकता। नरक में भी ऐसे जीव हैं, जो अगले ही भव में चरम शरीरी बनेंगे और दूसरी तरफ अरिहंत में भी चार कर्म बाकी हैं, इसलिए उनकी भी आत्मा पूर्ण निर्दोष नहीं है ! श्रीकृष्ण में कुछ दोष हो सकते हैं, किन्तु वे नगण्य हैं; दूसरी ओर गुणों का ढेर है ! हमें उनके सद्गुणों की ओर ध्यान देना चाहिये। वे तीन खण्ड के अधिपति हैं—प्रचण्ड शक्तिशाली हैं—उनकी सब जगह प्रतिष्ठा है। भैंस काली भले ही हो, दूध तो सफेद ही देती है ! श्रीकृष्ण काले हैं, किन्तु उनके सद्गुण उज्ज्वल हैं ! चन्द्रमा का प्रकाश देखो, उसका कलंक नहीं !"

रुक्मकुमार:—"पिताजी ! सफेद वस्त्र में जरा-सा भी काला दाग पड़ जाय, तो किसे नहीं खटकता ? दोषों की तरफ उपेक्षा करने से दोषों को प्रोत्साहन मिलता है। मैं गाय चराने वाले कृष्ण को अपने पास तक बिठाना ठीक नहीं समझता। इसलिए मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ कि आप अपने प्रस्ताव को वापिस ले लीजिये, क्योंकि वह सर्वथा अनुचित है।"

४–रुक्म की राय

कथावाचक को एक बार किसी युवक ने कहा कि रामायण सुनाओ। इस पर कथावाचक ने बड़े प्रेम से रामायण सुनाई। युवक शन्ति से सुनता रहा, किन्तु सारी कथा सुन लेने के बाद अन्त में उसके मुँह से सहसा निकल पड़ाः-"महाराज ! इससे तो रात का तमाशा ही अच्छा था।"

कहने का आशय यह है, कि मूर्ख को समझाना पत्थर पर पानी डालने जैसा है। सिंह के दाँत गिनना अथवा मणिधर साँप की मणि पाना जितना कठिन है, मूर्ख को समझाना उससे भी कई गुना अधिक कठिन है !

यद्यपि महाराज ने युक्ति से समझाने की कोशिश की थी, किन्तु मूर्ख राजकुमार ने उससे बुरी बातें ही ग्रहण कीं, भली नहीं। कहा भी है:—

मूर्खो हि जल्पतां पुंसां श्रुत्वा वाचः शुभाशुभाः।
अशुभं वाक्यमादत्ते, पुरीषमिव शूकरः ॥ ७ ॥

—महाभारत

मूर्ख मनुष्य-बोलने वालों के मुँह से शुभ-अशुभ वाणी सुन कर अशुभ ही ग्रहण करता है, जैसे सूअर (सिर्फ) विष्ठा को।

पितापुत्र के वादविवाद को बढ़ता देख कर मतिसागर ने महाराज को नम्रता-पूर्वक कहा:-"महाराज! अब आप शान्त रहिये। वाद-विवाद बढ़ाने में गृहकलह की सम्भावना है। रुक्म-कुमार ने आपके प्रस्ताव का विरोध किया है, तो अब उन्हीं से पूछना चाहिये कि वे किसे अपनी बहिन के योग्य समझते हैं। मुख्य सवाल तो योग्य वर के चुनाव का है!"

महाराज:—"हाँ, ठीक है। उसका मत भी जान लेने में हरकत नहीं। सबका मत सुनने और विचार करने ही के लिए तो यहाँ सब को एकत्रित किया गया है!"

यह सुन कर मन्त्री ने कहा:—"राजकुमारजी! हम सब लोग आप से यह सुनने के लिए उत्सुक हैं कि यदि आप रुक्मिणीजी के लिए श्रीकृष्ण को अयोग्य समझते हैं तो फिर योग्य किसे समझते हैं? बताइये!"

इस पर रुक्म के उत्तर को सुनाने से पहले उसके मित्रों का थोड़ा-सा परिचय बता देता हूँ। रुक्म का एक मित्र जरासंध था, जिसने अपनी कन्या की शादी कंस से की थी। कंस के अत्याचारों से खिन्न हो कर श्रीकृष्ण ने उसे पछाड़ डाला था! इस प्रकार अपने जँवाई को मारने वाले अर्थात् अपनी कन्या को विधवा बनाने वाले श्रीकृष्ण को जरासंध अपना शत्रु समझे-यह अस्वा-भाविक नहीं। विधवा पुत्री से पिता को कितना दुःख होता है, इसकी कल्पना केवल वही कर सकता है, जिसकी पुत्री विधवा हुई हो। नीतिकारों ने कहा है:—

कुग्रामवासः कुजनस्य सेवा
कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या।

मूर्खश्च पुत्रो विधवा च कन्या
दहन्त्यमी वन्हिमृते शरीरम् ॥८॥

—पद्यसंग्रहः

अर्थात् कुग्राम (जिसमें चौरादि का उपद्रव होता हो-लोग अन्याय करने वाले हों) में वास, दुर्जन की सेवा, अस्वादिष्ट, भोजन, क्रोध करने वाली पत्नी, मूर्ख पुत्र, विधवा कन्या-ये सब बिना अग्नि के ही शरीर को जलाने वाले हैं।

राजकुमार का दूसरा मित्र था-शिशुपाल। शिशुपाल के जन्म के समय ही एक ज्योतिषी ने उसकी माता को बताया था कि "यह बच्चा अपने मामा के पुत्र के हाथों से मारा जायगा। यह सुन कर उसकी माता को बड़ी चिन्ता हुई, वह अपने शिशु को साथ ले कर भाई वसुदेव के लड़के श्रीकृष्ण के पास पहुँची और शिशु को उनके चरणों में रख कर बड़े करुण स्वर से प्रार्थना करने लगी:—"आप इसे अभय दान दीजिये।"

श्रीकृष्णः—"भूआ का लड़का होने से यह मेरा भाई है। भाई की रक्षा करना तो मेरा कर्त्तव्य ही है। मेरा कर्त्तव्य मैं भली-भाँति समझता हूँ और उसका पालन करने की पूरी-पूरी कोशिश करता-रहता हूँ। इसके लिए आपको प्रार्थना करने का अवसर क्यों आया?

शि० की माता:-"आपसे प्रार्थना करने का अवसर इसलिए आया कि इसे केवल आप ही अभयदान दे सकते हैं!"

श्रीकृष्णः—"यह तो ठीक है, किन्तु मैं जानना यह चाहता हूँ कि इसे भय आखिर है किससे?"

शि० की माता:—"आप ही से इसे भय है। एक फलित शास्त्री ने कहा है कि इसकी मृत्यु इसी के मामा के पुत्र श्री कृष्ण के हाथों होगी।"

श्रीकृष्ण:—"फलित शास्त्री ने कुछ कहा हो या न कहा हो-जो कुछ होनहार है, भवितव्य है, वह टल नहीं सकता! कहा है:—

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोऽपि तादृशः।
सहायास्तादृशाश्चैव, यादृशी भवितव्यता ॥ ९ ॥
भवितव्यं भवत्येव, नारिकेलफलाम्बुवत्।
गन्तव्यं गतमित्याहुर्गजभुक्तकपित्थवत् ॥ १० ॥
नहि भवति यन्न भाव्यं, भवति च भाव्यं विनाऽपि यत्नेन।
करतलगतमपि नश्यति, यस्य हि भवितव्यता नास्ति ॥ ११ ॥

अर्थात् जैसी भवितव्यता होती है, वैसी ही (मनुष्य की) बुद्धि हो जाती है—वैसा ही प्रयत्न होने लगता है और वैसे ही सहायक मिलते हैं ॥९॥ भवितव्य होता ही है, जैसे नारियल में पानी [नारियल के फल में ऊपर जटाओं और कठोर आवरण के रहते हुए भी भीतर पानी पहुँच ही जाता है!] और जो गन्तव्य है, वह गजभुक्तकपित्थ के समान चला ही जाता है [कहते हैं, कि हाथी कवीठ के फल को निगल जाता है और वह गुदा की ओर से ज्यों का त्यों बाहर निकलता है, किन्तु उसके भीतर कुछ नहीं रहता।] कहने का आशय यह है कि संयोग और वियोग भवितव्यता के अनुसार ही हुआ करते हैं ॥१०॥ जो नहीं होने का है वह नहीं होता और जो होनहार है, वह बिना प्रयत्न के भी हो जाता

है। भवितव्यता न हो तो हाथ में आया हुआ भी छूट जाता है ॥११॥"

शि० की माता:-फलित शास्त्रियों से जो भविष्य पूछा जाता है, वह केवल इसलिए कि हम भावी विपत्ति को टाल सकें। मैंने नीतिकारों से सुना है:—

उद्यमं साहसं बुद्धिर्धैर्यं शक्तिः पराक्रमः ।
षडेते यत्र वर्त्तन्ते, तत्र देवः सहायकृत् ॥ १२ ॥

अर्थात् उद्यम, साहस, बुद्धि धैर्य, शक्ति और पराक्रम—ये छह गुण जहाँ होते हैं, वहाँ स्वयं देव भी सहायक बन जाते हैं। आप कर्मयोगी हैं, साहसी हैं, बुद्धिमान हैं, धीर-वीर और पराक्रमी हैं इसलिए मैं आपकी सहायता मांगने आई हूँ। आप जैसे महापुरुष भवितव्यता को भी बदल सकते हैं-ऐसा मेरा विश्वास है !"

श्रीकृष्ण:—"भूआजी ! पुत्रमोह के कारण ही आप ऐसी बात कह रही हैं, अन्यथा भवितव्यता को बदलने की शक्ति किसी में नहीं है। नीतिकार कहते हैं:—

अवश्यं भाविनो भावाः, भवन्ति महतामपि ।
नग्नत्वं नीलकण्ठस्य, महाहिशयनं हरः ॥ १३ ॥
अवश्यं भाविभावानाम्, प्रतीकारो भवेद्यदि ।
तदा दुःखैर्न लिप्येरन्नलरामयुधिष्ठिराः ॥ १४ ॥

अर्थात् जो अवश्यभावी है, वह बड़ों-बड़ों को भी होता है-शंकर नग्न रहते हैं और विष्णु को शेषनाग की शय्या पर सोना पड़ता है ॥ १३ ॥ भवितव्यता का यदि प्रतीकार हो सकता होता

तो नल (महासती दमयन्ती के पति) राम और युधिष्ठिर क्यों दुःख उठाते ? ॥ १४ ॥

कहने का आशय यह है कि यदि मेरे हाथ से ही इसकी मृत्यु होने वाली होगी तो वह टल नहीं सकती ! फिर भी यह मेरा भाई है और अभी बच्चा है, इसलिए बच्चों के अपराध पर कोई ध्यान नहीं देता। हाँ, बड़ा होने पर भी ९९ अपराध मैं इसके माफ कर दूँगा-यह वचन देता हूँ। आप निश्चिंत रहिये और अभी से इस पर ऐसे संस्कार डालने की कोशिश कीजिये कि इससे कोई अपराध ही न बन पड़े।"

यह सुनकर प्रसन्नता से शिशुपाल को उठा कर उसकी माता फिर अपनी राजधानी चन्देरी में लौट आई। बड़ा होने पर अपनी माता के मुँह से उपर्युक्त सारा वृत्तान्त सुन कर शिशुपाल श्रीकृष्ण को उपकारी न मान कर उल्टा शत्रु मानने लग गया था।

हाँ, तो उधर मन्त्री के प्रश्न का उत्तर देते हुए कुमार ने कहा:—"सभासदो! अपनी राय में मैं महापराक्रमी महाराजा शिशुपाल को ही बहिन के लिए सुयोग्य वर समझता हूँ। वे शक्तिशाली युवक हैं—कामदेव के समान सुन्दर हैं। निन्यानवे राजा उनके आधीन हैं, इसलिए वे सब बरात में आयेंगे और तब उनके साथ रुक्मिणी का विवाह करने में हमारी और हमारे राज्य की कितनी शोभा होगी ? इसकी कल्पना से ही मुझे अपूर्व आनन्द आ रहा है ! मुझे विश्वास है, कि आप सब लोग मेरे इस प्रस्ताव का हार्दिक—समर्थन करेंगे।"

ऐसा कह कर रुक्मकुमार आशाभरी नजरों से सब की ओर देखने लगा ! किन्तु सभी सभासद मौन रहे; क्यों कि कोई उस प्रस्ताव से सहमत होना नहीं चाहता था। ऐसे शान्त और गम्भीर वातावरण में भी रुक्म की बात का समर्थन करने के लिए किसने मौन तोड़ा ? और क्या कहा ? सो अवसर हुआ, तो कल बताया जायगा ।

७—मुहूर्त देखा !
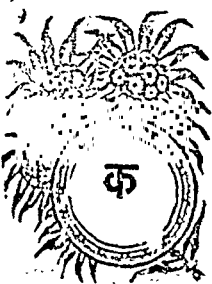
मल के समान कोमल हृदय होता है—माता का। वह सुपुत्र और कुपुत्र का भेद नहीं समझती दोनों पर उसका समान वात्सल्य होता है। नीतिकारों ने कहा है:—

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।

पूत भले ही कपूत हो जाय, किन्तु माता कभी कुमाता नहीं होती। पुत्रमोह में फँस कर वह न्याय-अन्याय का भी विचार नहीं कर पाती।

रुक्मकुमार के प्रस्ताव का-उपस्थित सभासदों में से किसी ने जब समर्थन नहीं किया तो यह देख कर उसकी माता शिखावती से रहा न गया। अपने पाँच पुत्रों में से सबसे बड़ा पुत्र था-रुक्मकुमार! महाराज भीम के बाद राजसिंहासन उसी को मिलने वाला था और मिलने वाला था महारानी शिखावती को "राज-माता" का पद! इसे वह कैसे भूलती? भविष्य में 'राजमाता" के गौरवमय पद की प्राप्ति कराने वाले अपने बड़े पुत्र के प्रस्ताव का किसी के द्वारा समर्थन न हो-यह उसका कितना बड़ा अपमान है? कोई माता अपने पुत्र का अपमान नहीं सह सकती! फिर वह तो भावी राजमाता थी-कैसे सह जाती? बोल उठी:—

"मैं रुक्मकुमार के प्रस्ताव का समर्थन करती हूँ। कुमार महाराजा शिशुपाल का मित्र है, इसलिए वह भली भांति जानता

है कि उनमें क्या-क्या गुण हैं ? मैंने भी समय-समय पर उनके गुणों की प्रशंसा सुनी है। उनका नाम ही उनके गुणों का परिचय दे रहा है। शिशुओं का—छोटे छोटे बच्चों का भी जो पालन करते हैं वे शिशुपाल हैं। उनकी शूरवीरता के कारण ९९ राजा उनके आधीन हैं। इतने बड़े साम्राज्य के अधिपति से सम्बन्ध जोड़ने में ही बुद्धिमत्ता है जिससे कि सुख दुःख में उनसे सहायता मिल सके। मेरे विचार से राजकन्या के लिए महाराज शिशुपाल से बढ़ कर योग्य वर शायद ही कोई हो।"

महारानी की इस विचित्र बात को सुन कर सभी सभासद आश्चर्य में डूब गये। मन्त्री और महाराज भी चिन्ता में पड़ गये। उत्तेजित हो कर महाराज कुछ कहें—इसके पहले ही मन्त्री ने उन्हें धीरे-धीरे कान में कुछ कहा, जिसे सुन-समझ कर महाराज भीम ने यों कहा:—

"उपस्थित सज्जनो ! किसी बात को पूरी तरह से समझे बिना उसका समर्थन या विरोध करना उचित नहीं है। शिशुपाल का समर्थन करने वाले कुमार और उसकी माता को नहीं मालूम कि एक फलितशास्त्री की भविष्यवाणी के अनुसार शिशुपाल की मृत्यु श्री कृष्ण के हाथों होने वाली है-शिशुपाल से शादी करने का अर्थ राजकन्या रूक्मिणी को विधवा बनाने का एक प्रयत्न है। दूसरी तरफ श्री कृष्ण के गुणों का उन्हें पता नहीं है-मैं पहले बता चुका हूं, किन्तु उस ओर ये लोग ध्यान देना नहीं चाहते तो मैं क्या करूँ ? मैं अब इस विषय में सदा तटस्थ रहूँगा। राजकन्या की शादी का भार रुक्म और उसकी माता के सिर पर छोड़ता हूँ। वे जैसा भी उचित समझें, करें ! मैं अब कुछ न कहूँगा। हां, इतना अवश्य कहदूँ कि वे जो कुछ करें, पूरी तरह से सोच-समझ

कर ही करें और वैसा ही करें कि जिससे बाद में उन्हें पछताना न पड़े।"

ऐसा कह कर महाराज उठ खड़े हुए और चले गये। मन्त्री ने सभा बरखास्त कर दी। सब लोग अपने-अपने घर चले गये।

दो आदमी रस्सी को खींच रहे हों तो उसके टूटने की सम्भावना रहती है और यदि टूट गई तो दोनों गिर पड़ेंगे-दोनों के शरीर में चोंट आयगी। ऐसे समय में दोनों में से एक आदमी रस्सी ढीली छोड़ दे तो सामने वाला गिर पड़ेगा!

यहाँ महाराज भीम ने भी गृहकलह के भय से बचने के लिए बात को ढीली छोड़ दी है। तीन आदमी बोझा सिर पर उठा कर ले जा रहे हों और उनमें से कोई एक आदमी अपना कंधा हटा ले तो सारा बोझा दो जनों पर आ पड़ता है। महाराज भीम के तटस्थ हो जाने से रुक्म और शिखावती पर रुक्मिणी के विवाह का सारा भार आ पड़ा है। बोझ बढ़ने पर मनुष्य घबराता है, किन्तु यहाँ रुक्म प्रसन्न हो रहा है। पिता के अपमान का उसे कोई ध्यान नहीं है! वह माता से कह रहा है:—"माताजी! पिताजी बहिन को ग्वालिन बनाना चाहते थे-भला यह भी कोई समझदारी की बात है? आज आपने मेरी बात का समर्थन किया और मुझे विजेता बनाया। महाराज के प्रभाव से सभी सभासद चुप रहे-उनके आतंक से किसी ने उनके विरुद्ध बोलने का साहस नहीं किया-किन्तु धन्य है आपको! आपने मेरा समर्थन करके बड़े साहस का काम किया है। अब तक पिताजी की मनमानी चलती थी, अब अपनी चलेगी।"

शिखावती:—"यह तो ठीक है कि महाराज ने तटस्थता स्वीकार कर ली है, किन्तु वे बड़े अनुभवी हैं-चतुर हैं। एक ओर

बैठे-बैठे भी गुप्तरूप से कोई न कोई ऐसी कार्यवाही करते रहेंगे कि जिससे हमारी योजना सफल न हो पाये और उसमें अनेक विघ्न उठ खड़े हों-इसलिए काफी सावधानी से काम करना चाहिये।"

रुक्मकुमारः—"करना ही चाहिए, बल्कि मेरा तो यह विचार है कि महाराज शिशुपाल के पास टीका भी भेज देना चाहिये इसके लिए मैं अभी ज्योतिषी को बुला कर विवाह का मुहूर्त्त निश्चित करवाता हूं।"

ऐसा कह कर रुक्म ने किसी चाकर को भेज कर कुन्दनपुर के सबसे बड़े फलितज्ञ को बुलवा लिया। फलितज्ञ ने अपना पंचाङ्ग फैलाया--रुक्मिणी की कुण्डली देखी और गणित करके मुहूर्त्त का निर्णय करने लगा। ज्योतिषी अपने आपको राजा से भी बड़ा समझते हैं। एक ज्योतिषी ने यह बात यों प्रकट की थी:—

चतुरङ्गबलो राजा, जगतीं वशमानयेत्।
अहं पंचाङ्गबलवानाकाशं वशमानये॥ १४॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार

अर्थात् राजा के पास चतुरंग--शक्ति (हाथी, घोड़े, रथ और पदाति) है, इसलिए वह पृथ्वी को वश में करता है, किन्तु मेरे पास पंचाङ्ग शक्ति है, इसलिए मैं आकाश को भी वश में कर लेता हूँ। (अर्थात् आकाश के ग्रह--नक्षत्रों की गणित कर सकता हूं।)

फलितज्ञ ने कहा:—"राजकन्या का विवाह माघमास की कृष्णाष्टमी को होगा किन्तु उस समय इसके कुटुम्बिजनों में खेद रहेगा। आप किसके साथ शादी करना चाहते हैं?"

रुक्मः—"चन्देरी के महाराज शिशुपाल के साथ।"

फलितज्ञ:—"तो लाइये ! उनकी कुण्डली कहाँ है ? उसे भी देख लूँ ।"

रुक्म:—"महाराज शिशुपाल की कुण्डली तो हमारे पास नहीं है; लेकिन उनके साथ कुण्डली मिले या न मिले-हमें शादी तो उन्हीं के साथ करनी है । हम आपसे यह नहीं पूछना चाहते कि उनके साथ सम्बन्ध उचित है या अनुचित ? हम तो सिर्फ शादी की तिथि पूछना चाहते हैं:—ऐसी तिथि बताइये कि उस दिन रुक्मिणी का निश्चित विवाह हो ।"

फलितज्ञ:—"मैं कह चुका हूँ कि माघ कृष्णाष्टमी के दिन राजकुमारी का निश्चित विवाह होगा ! किन्तु यह भी बता गया हूँ कि उस दिन आप लोगों के हृदय में खेद रहेगा । खेद का कारण यही हो सकता है कि आप जिनके साथ शादी करना चाहते हैं उनके साथ शादी न हो और किसी दूसरे ही व्यक्ति के साथ हो जाय । इसीलिए मैंने शिशुपाल की कुण्डली माँगी थी, जिससे कि मैं ठीक ढंग से बता सकूँ कि उनके साथ योग जुड़ता है या नहीं ?"

इस पर रुक्म ने कहा:—"बस-बस, चुप रहिये ! हमें आपके प्रवचन की आवश्यकता नहीं है । आपका काम हो चुका है । अब आप अपने घर पधारिये ।"

पञ्चांग समेट कर फलितज्ञ राजमहल से बाहर चले गये ।

६-टीका भेजा
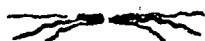
पूत रुक्म ने अपनी माता से सलाह लेकर सार-स्वत नामक भाट को बुलाया और उसे समझाने लगाः—

"सारस्वतजी ! आप तो जानते ही हैं कि रुक्मिणी के विवाह के विषय में महाराज भीम के साथ हमारा मत--भेद होगया है। वे श्रीकृष्ण जैसे साधारण आदमी से शादी करके बहिन को ग्वालिन बनाना चाहते थे, किन्तु मुझ से यह देखा नहीं गया और उस दिन भरी सभा में मैंने घोषित किया था कि शिशुपाल के साथ ही बहिन की शादी होनी चाहिये। मरी बात को योग्य समझ कर पूज्य माताजी ने भी उसका समर्थन किया था। इससे महाराज तटस्थ हो गये और इसलिए बहिन के विवाह की सारी जिम्मेदारी अब अपने ऊपर आ पड़ी है। मैंने ज्योतिषी से मुहूर्त्त भी निकलवा लिया है।

अब एक महत्त्वपूर्ण काम ही रहा है और वह है--चन्देरी टीका ले जाना। आप बड़े अनुभवी और वाक्चतुर हैं, इसलिए मैं समझता हूं कि आप इय कार्य भलीभाँति कर सकेंगे।"

सारस्वतः—'मैं जाने के लिए तैयार हूँ राजकुमार ! मैं तो राज्य का सेवक हूँ मुझे तो आज्ञा का पालन करना है-भले ही वह आज्ञा महाराज की हो, महारानी की हो या आपकी। फिर

भी यदि टीका ले जाते हुए देख कर महाराज ने मुझे रोक दिया तो मैं क्या करूँगा ? मुझे रुकना ही पड़ेगा ! क्योंकि युवराज से महाराज का पद बड़ा है।"

रुक्म:—"इस आपत्ति से बचने का उपाय यह है कि आप पिताजी को इस बात का पता न लगे, इस ढंग से चुपचाप चले जाइये। मैं आपकी सारी व्यवस्था कर दूँगा। शिशुपाल को टीका-सामग्री भेंट करते हुए तरीके से आप पिता--पुत्र के परस्पर विरुद्ध विचारों की बात भी कह दें और यह भी कह दें कि सम्भव है-- पिताजी का संकेत पा कर वह ग्वाला लग्नतिथि के प्रसंग पर आ कर कुछ उत्पात मचाये ! तो उस समय हमें युद्ध भी करना होगा। इसलिए लग्नतिथि पर बरात के बहाने अपना सुविशाल सैन्य भी अवश्य लेते आयें। मैं भी इधर अपनी सेना तैयार रक्खूँगा। दोनों की सम्मिलित शक्ति से डर कर पहले तो श्रीकृष्ण आने का साहस ही न करेगा और यदि साहस किया भी तो उसका यहाँ कचूमर बना दिया जायगा।"

इसके बाद टीका की सामग्री सजा कर रुक्मकुमार ने अपने हस्ताक्षर से टीका-पत्र लिख कर सारस्वत भाट को दे दिया और कुछ सैनिकों के साथ उसे एक रथ में बिठा कर गुप्तरूप से चन्देरी जाने के लिए रवाना कर दिया।

बहुत-से लोग शकुन देखकर अच्छे-बुरे भविष्य का अन्दाज लगा लेते हैं। बुरे शकुन को कार्यसिद्धि में बाधक समझ कर कार्य प्रारम्भ ही नहीं करते। बुरा शकुन दिखाई दे तो विघ्न की आशंका से चालू कार्य भी छोड़ बैठते हैं। मैं एक ऐसी महिला को जानता हूँ, जो काफी विदुषी होते हुए भी अच्छे शकुन को देखे बिना सोती तक नहीं थी ! उसके इस नियम की बात मैंने उसी के मुँह से सुनी थी।

इधर सैनिकों के साथ रथ में बैठे हुए सारस्वत भाट को रोती हुई एक नकटी कन्या सामने ही दिखाई दी। कुछ आगे बढ़ने पर एक विधवा नारी दिखाई पड़ी, जिसके सिर पर औंधा घड़ा था। नगर से बाहर निकलने पर कुछ नपुंसक लोग दीखे। नगर से कुछ दूर निकल जाने पर जंगली हिरन उसका रास्ता काट-काट कर निकलने लगे! इस प्रकार एक से एक बढ़कर अपशकुनों का सामना करता हुआ भी सारस्वत भाट चुपचाप आगे बढ़ता ही जा रहा था। वह सोच रहा था कि कार्य की सफलता में सन्देह है, किन्तु लौटना भी व्यर्थ है। जिस रुक्म ने अपनी मनमानी करने के लिए पूज्य पिताजी की बात भी न मानी, वह इन अप-शकुनों की बात कैसे मान लेगा? इसलिए यद्यपि कुन्दनपुर के लिए मैं विघ्नों का निमित्त बनने जा रहा हूँ-फिर भी निष्पाप हूँ-निरपराध हूं। सेठजी की आज्ञा से माल खरीदने पर यदि नुकसान चला जाय, तो उसके लिए मुनीम को अपराधी नहीं माना जायगा।

धीरे-धीरे रास्ता खतम हुआ और चन्देरी में रथ का प्रवेश हुआ। राजमहल के प्रमुख द्वार पर पहुँच कर सारस्वत भाट ने द्वारपाल के द्वारा अपने आने की अनुज्ञा मँगवाई। द्वारपाल ने महाराज शिशुपाल के निकट जाकर निवेदन किया:-"महाराज! कुन्दनपुर से आप के लिए राजकीय सन्देश लेकर सारस्वत नामक एक भाट आया हुआ है। क्या किया जाय?"

"उसे आने दिया जाय" महाराज ने कहा। द्वारपाल से अनुज्ञा पाते ही सैनिकों सहित सारस्वत भाट महाराज शिशुपाल के निकट पहुँचा। यथोचित आसन पर बैठ कर कुशल प्रश्न पूछने पर भाट ने उत्तर दिया:—"अब तक तो कुशल है और रुक्मकुमार आपकी कुशल चाहते हैं।"

बात कहने--कहने का भी ढंग होता है। सारस्वत ने व्यंग्य ां कहा है कि अब तक भले ही कुशल हो, किन्तु भविष्य अन्ध--ार-मय है। साथ ही यह भी कह दिया कि सिर्फ रुक्मकुमार ही ापकी कुशल चाहते हैं, महाराज भीम आदि नहीं। परन्तु इन ातों को शिशुपाल जैसे व्यक्ति समझ नहीं सकते।

आने का प्रयोजन पूछने पर सारस्वत ने कहाः—"कुन्दन ुर के परमप्रतापी महाराज भीम की इकलौती कन्या है—रुक्मिणी ुमारी : रूप और गुण में अद्वितीय है। उसकी प्रशंसा मैं नहीं र सकता! क्यों कि मेरी वाणी में उतनी शक्ति नहीं है। उसके न्मदिन से ही राजकीय कोष में अभिवृद्धि होती रही है। धीरे-ीरे बचपन छूटा और ज्यों ही उसने जवानी में प्रवेश किया त्यों ो उसके पिताजी को विवाह की चिन्ता हुई। कहा है:—

जातेति कन्या महती हि चिन्ता
कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः।
दत्ता सुखं यास्यति वा न वेति
कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम् ॥१६॥

---सुभाषितरत्नभाण्डागार.

कन्या पैदा हुई है—यह (समाचार भी) भारी चिन्ता का कारण है (फिर बड़ी हो जाने पर) किसे देनी चाहिए? यह बड़ा श्न खड़ा हो जाता है। देने पर भी उसका जीवन सुख-पूर्वक बीतता है या नहीं? यह चिन्ता होने लगती है-इस प्रकार कन्या ा पिता होना निश्चयपूर्वक कष्टदायक है।

इस कष्ट से पिण्ड छुड़ाने के लिए कहिये या रुक्मिणी के योग्य वर ढूँढने के लिए कहिये अथवा अपने इस लौकिक कर्त्तव्य

का पालन करने के लिए महाराज भीम ने एक दिन विचार विमर्श करने को अनुभवी नागरिकों की तथा मन्त्री, युवराज आदि राज-कर्मचारियों की एक बैठक बुलाई। सभासदों के आग्रह से पहले महाराज भीम ने अपनी राय प्रकट करते हुए श्रीकृष्ण की खूब तारीफ की! ......(बीच ही में कृष्ण प्रशंसा से उत्तेजित होकर शिशुपाल ने कहा) "क्या उस कोयले के समान काले नीच ग्वाले की तारीफ की? ....जी हाँ! (सारस्वत ने अपनी बात चालू रखते हुए कहा) और राजकन्या रुक्मिणी के लिए उन्हीं को सुयोग्य वर बताया! किन्तु आपके मित्र युवराज रुक्म ने भी सभा में उस प्रस्ताव का विरोध करके आपको वर रूप में चुनने योग्य बताया और महारानी शिखावती ने भी आप ही को वर रूप में स्वीकार करने का समर्थन किया! इससे महाराज माता-पुत्र पर विवाह के निर्णय का भार सौंप कर तटस्थ हो गये। इस के बाद युवराज ने ज्योतिषी से माघ कृष्णा अष्टमी की लग्नतिथि निश्चित करके उस दिन बरात लेकर आपको विवाह के लिए पधारने का आमन्त्रण, यह पत्र और टीकासामग्री भेजी है, जिसे लेकर मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ—स्वीकार कीजिये।" साथ ही यह भी सन्देश भेजा है कि आप बरात के बहाने शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित विशाल सेना लेकर आइयेगा—मैं भी इधर अपनी सेना तैयार रक्खूँगा, जिससे कि उस मौके पर यदि कहीं वह ग्वाला आकर ऊधम मचाने लगे तो उसका सर्वनाश किया जा सके।"

यह सुन कर महाराज शिशुपाल की प्रसन्नता का पार न रहा। उन्होंने बड़े प्रेम से टीकापत्र उठाया और उसे पढ़ने लगे।
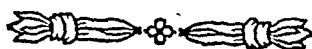
७-भौजाई से बातचीत
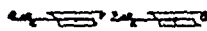
न्यापक्ष की ओर से पाणिग्रहण के लिए आये हुए टीके को स्वीकार करने से पहले किसी ज्योतिषी से राय लेने का उस समय रिवाज था ! इसलिए महाराज शिशुपाल ने भी उस परम्परा का पालन करने के लिए चन्देरी के सबसे बड़े राजज्योतिषी को बुलाया और अपनी कुण्डली तथा कन्या की कुण्डली उसके सामने रख दी और विवाह के लिए माघकृष्णाष्टमी की तिथि उपयुक्त है या नहीं ? इस विवाह से वर-वधू का जीवन सुखमय रहेगा या नहीं ? आदि प्रश्न पूछे ।

ज्योतिषी ने दोनों कुण्डलियाँ देखीं और फिर पंचांग के पन्ने इधर-उधर पलट कर धीरे-धीरे सिर हिलाना शुरू कर दिया । यह देख कर शिशुपाल ने पूछा:-"सिर क्यों हिला रहे हो ? लग्नतिथि बराबर नहीं है क्या ?"

ज्योतिषी:—"लग्नतिथि कन्या के लिए तो अनुकूल है, किंतु आपके लिए नहीं । कुण्डली से मालूम होता है कि कन्या असाधारण है और किसी असाधारण पुरुष के साथ ही उसका विवाह होगा !"

शिशुपाल को यह सुन कर गुस्सा आ गया और फटकारते हुए कहा:-"तो क्या तुम मुझे साधारण पुरुष समझते हो ? मालूम

होता है, कि तुम श्रीकृष्ण के पक्षपाती हो और उसके किसी अनु-रागी ने तुम्हें बहकाया है इसीलिए तुम ऐसा कह रहे हो--कुण्डली का तो बहाना मात्र है ! मैं अच्छी तरह से जानता हूं कि कुण्डली से किसी का भाग्य नहीं जाना जा सकता ! फलितविद्या केवल आजीविका के लिए चलाया हुआ एक धंधा है। फलितशास्त्र दम्भियों के लिए पेट भरने के साधन हैं–और कुछ नहीं। यह तो मेरी मेहरबानी समझो कि मैं इस धंधे को चलाने दे रहा हूं। हमारा भविष्य हमारे भुजबल पर निर्भर रहता है, ग्रह-नक्षत्रों पर नहीं ! फिर भी केवल एक परम्परा को निभाने के लिए तुम्हें बुलाया गया है; किन्तु हमारी मेहरबानी को न पहिचान कर कृतज्ञ बनने के बदले तुम जो उल्टे कृतघ्न बन गये हो, सो मैं सह नहीं सकता ! आज से तुम्हारा "राजज्योतिषी" पद छीना जाता है और तुम्हें दी हुइ जागिरी भी। जिसके बहकाने में आकर तुमने अपनी फलित-विद्या का प्रहार मुझ पर करने की चेष्टा की है, अब तुम उसी के आश्रय में जाकर रहो। तुम्हारे लिए अब हमारे राज्य में कोई स्थान नहीं ! चले जाओ।"

फटकार सुन कर फलितज्ञ वहाँ से चुपचाप रवाना होगया। फिर महाराज शिशुपाल ने टीका स्वीकार करते हुए सारस्वत भाट को आदर-सहित विदा किया और कह दिया कि हमारी ओर से रुक्म-कुमार से कह देना कि "हम लग्नतिथि से कुछ दिन पहले ही बरात लेकर ठाठ से दलबल सहित आयेंगे-आप निश्चिन्त रहें।" सार-स्वत अपने साथ में आये हुए सैनिकों के साथ रथ में बैठ कर विदर्भदेश की ओर रवाना हो गया।

इधर शिशुपाल ने मन्त्री से कह दिया कि कुन्दनपुर से आये हुए टीके को भेजने की खुशियाँ मनाने की राजकर्मचारियों को सूचना कर दो। मन्त्री ने वैसा ही किया।

इसके बाद अपनी भौजाई को यह खुश खबर सुनाने के लिए शिशुपाल भीतर गया और भौजाई के पास जाकर प्रणाम करके बैठ गया, किन्तु मारे खुशी के वह कुछ बोल न सका। यह हालत देख कर भौजाई ने स्वयं ही बात छेड़ते हुए पूछाः-"कहो देवरजी ! बात क्या है ? आज बहुत प्रसन्न मालूम हो रहे हो। सदा अपनी खुशी मुझे भी दिया करते थे, किन्तु आज तो अकेले ही आनन्द का अनुभव कर रहे हो। ऐसा क्यों ?"

शिशुपालः—"भौजाईजी मैं अकेला आनन्द नहीं लूटना चाहता हूं इसीलिए तो मैं आपके निकट आया हूँ कि जिससे आनन्द का कारण सुना कर आपको भी प्रसन्न कर सकूँ।"

भौजाईः-"तो फिर सुनाने में विलम्ब क्यों हो रहा है-सुना दीजिये न ?"

शिशुपालः—"बात यह है कि आज कुन्दनपुर की राज-कन्या रुक्मिणी का टीका आया था, जिसे झेल लिया गया है। आपकी सेवा करने के लिए माघकृष्णा अष्टमी को एक नई देवरानी आने वाली है !"

भौजाईः—"यदि आप की बात सच है, तो टीका-पत्र दिखाइये !"

शिशुपाल (अपनी जेब से टीका-पत्र निकाल कर भौजाई के हाथ में देते हुए): "वह तो मैं अपने साथ ही लाया हूँ-देखिये !"

भौजाई (टीका-पत्र ध्यान से पढ़ कर):-"अच्छा, तो यह रुक्मिणी कुन्दनपुर के महाराज रुक्म की कन्या है ! नाम तो पिता-पुत्री का मिलता जुलता ही है। जैसे महाराज द्रुपद की कन्या द्रौपदी है, वैसे ही महाराज रुक्म की कन्या रुक्मिणी है।"

शिशुपालः—"नहीं-नहीं, महाराज भीम की कन्या रुक्मिणी है। युवराज रुक्म तो उस कन्या के बड़े भाई हैं !"

भौजाईः—"तो इसमें महाराज भीम के हस्ताक्षर क्यों नहीं हैं ?"

शिशुपालः—इसलिए कि वे उस कन्या के विवाह से तटस्थ हो गये हैं और उन्होंने युवराज रुक्म पर ही उसके विवाह-कार्य का भार सौंप दिया है।"

भौजाईः—"महाराज तटस्थ हुए हैं, तो इसमें कोई कारण अवश्य होना चाहिये !"

शिशुपालः—"कारण यह है, कि वे श्रीकृष्ण के साथ उसका विवाह करना चाहते थे, किन्तु क्षत्रियवंश के अभिमानी युवराज रुक्म ने उस प्रस्ताव का विरोध करके मेरा नाम सुझाया और कहा कि मैं अपनी बहिन को ग्वालिन नहीं, क्षत्राणी बनाना चाहता हूँ। उसके इस प्रस्ताव का महारानी शिखावती ने भी समर्थन किया। इस प्रकार मत-भेद हो जाने से महाराज तटस्थ हो गये।"

भौजाईः—"तुमने अपने राज-ज्योतिषी से इस विषय में राय ली क्या ?"

शिशुपालः—'ज्योतिषी की राय तो सिर्फ परम्परा का पालन करने के लिए ही ली जाती है, सो उसे बुलाया भी था, किन्तु मालूम हुआ कि उसे किसी ने बहकाया है, इसी लिए:—

यह मूर्ख कहता था कि टीका आप लौटा दीजिये।
मानूँ भला यह बात कैसे आप भी तो सोचिये ॥"

भौजाई:—' मैंने सोच लिया है और मेरा राय भी यही है कि यह टीका लौटा दीजिये; क्यों कि पहले तो ज्योतिषी ही अपनी गणित के आधार पर उसे अनुचित बता रहा है और फिर महाराज भीम भी इससे सहमत नहीं हैं। वे श्रीकृष्ण से उसका विवाह कराना चाहते हैं, इसलिए उनके निमन्त्रण को पाकर सम्भव है, श्रीकृष्ण भी वहाँ आ जायँ और यदि ऐसा ही हुआ तो युद्ध अनिवार्य हो जायगा !"

शिशुपाल:—"पहली बात तो यह है कि महाराज भीम तटस्थ हैं, इसलिए वे श्रीकृष्ण को निमन्त्रण भेज ही नहीं सकते और यदि भेज भी दिया तो हम उससे डरने वाले नहीं हैं। युद्ध करना तो क्षत्रियों का धर्म है। नीतिकार कहते हैं:—

"क्षणविध्वंसिनः कायाः, का चिन्ता मरणे रणे ?"

अर्थात शरीर क्षणिक है, तब युद्ध में मरने की क्या चिन्ता ? हम लोग प्राणों की पर्वाह नहीं करते !"

भौजाई:—"मत कीजिये प्राणों की पर्वाह, किन्तु दूसरों के प्राणों का तो विचार कीजिये ! युद्ध में होने वाली मार-काट से कितने सैनिकों की पत्नियाँ विधवा हो जायँगी ? और आप बलवान् हैं-यह जानती हूं, फिर भी मुझे विश्वास है कि श्रीकृष्ण से युद्ध में आपको विजय नहीं मिल सकती ! इसलिए टीका लौटा देना ही उचित है। यदि आप युवराज रुक्म के निमन्त्रण को अस्वीकार नहीं कर सकते और टीका लौटाना भी ठीक नहीं समझते तो कम से कम लग्नतिथि ही टाल दीजिये।"

शिशुपाल:—"टीका स्वीकार करके लौटाना तो अपनी कायरता प्रकट करना है और लग्नतिथि टालने का कोई बहाना भी नहीं सूझ रहा है !"

भौजाई:—"नहीं सूझ रहा है, तो मैं बताती हूँ। आप माघकृष्णाष्टमी को दूसरी कन्या से शादी कर लीजिये मैं लिखा-पढ़ी करके अपनी छोटी बहिन से उस तिथि को आपके साथ लग्न-सम्बन्ध करवा देती हूँ।"

शिशुपाल:—'हाँ, यूँ कहो! अब मालूम हुआ कि आप टीका लौटाने की बात क्यों कह रही हैं। आपको अपनी बहिन से शादी करवाना है, तो रुक्मिणी की शादी करने के बाद उसे भी ब्याह लाऊँगा-चिन्ता मत कीजिये! इस तिथि को तो रुक्मिणी से ही विवाह करूँगा।

भौजाई:—"मुझे अपनी बहिन के विवाह की नहीं, आपके अपमान की चिन्ता है। बहिन का विवाह तो कहीं भी हो जायगा, किन्तु यह तिथि न टालने पर आपका जो कुछ सन्मान है, वह मिट्टी में मिल जायगा। इसीलिए मैं रोक रही हूँ। भविष्य बतायगा कि मेरी बातों में कितनी सचाई है?"

इस प्रकार दोनों में बातचीत होती-रही।

९—नारदजी आये
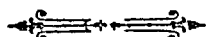
कन्या पराया धन मानी जाती है। वह माँ-बाप को छोड़ कर सास-ससुर की सेवा में चली जाती है—एक दिन। बहुत प्राचीन परम्परा से ऐसा होता रहा है। वह दो कुटुम्बों के सम्बन्ध को जोड़ती है। पीहर में माता-पिता की सेवा करती है और ससुराल में सास-ससुर की। उसका जीवन ही सेवामय होता है।

ससुराल में जहाँ वह सास-ससुर का सन्मान पाती है, वहाँ पीहर में माता-पिता का वात्सल्य। वात्सल्य के कारण माता पिता भी कन्या के हित का ही विचार करते हैं, किन्तु आजकल बहुत-से माता पिता ऐसे भी देखने में आते हैं कि जो पैसों के लोभ में पड़कर अपनी नौजवान कन्या का किसी बूढे से ब्याह करने में भी नहीं हिचकिचाते! धन देने वाला वर न मिलने पर काफी समय तक कन्या को कुँवारी रखते हैं। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि विहार करते हुए एक गाँव में मैंने अपनी आँखों से एक ऐसी कुमारी कन्या को देखा था कि जिसकी उम्र ३५ वर्ष की हो चुकी थी। कन्या के प्रति माँ-बाप का यह अत्याचार है!

दूसरी बात यह है कि शादी के पहले माता-पिता को चाहिये कि वे कन्या की भावना को भी जानलें। हो सकता है कि कन्या सांसारिक बन्धन से दूर रह कर आत्मकल्याण करना चाहती हो! ऐसी कन्या को जबर्दस्ती विवाह के बन्धन में फँसाना भी अत्याचार का एक प्रकार कहलायगा।

तीसरी बात यह है कि जिस वर के साथ कन्या की शादी की जा रही है, उसे कन्या पसन्द भी करती है या नहीं? यह भी माता-पिता को जान लेना चाहिये, जिससे कि वर-कन्या का कौटुम्बिक जीवन सुखमय बीते। यदि ऐसा न करके (कन्या जिसे पसन्द नहीं करती- ऐसे किसी) अयोग्य वर के साथ शादी कर दी जाय- तो यह भी एक अत्याचार होगा।

यहाँ युवराज रुक्म ने टीका भेजा था, किन्तु शिशुपाल को वर रूप में स्वीकार करने के लिए रुक्मिणी तैयार है या नहीं? ऐसा विचार नहीं किया गया। यह तो लगभग वैसा ही है कि कोई ग्राहक दूकानदार की इच्छा के बिना ही कोई माल उठा ले जाना चाहे।

टीका की स्वीकृति लेकर चन्देरी से सारस्वत भाट लौट आया था, इसलिए उस दिन सारे राजमहल में चहल-पहल थी। सखियों को जब यह समाचार मालूम हुआ तो बधाई देने के लिए रुक्मिणी के पास गई और कहने लगीं:- 'अब तो आप हमें छोड़ कर चली जाने वाली हैं, फिर तो सिर्फ पतिदेव की ही याद रहेगी-हमारी नहीं। प्राणनाथ की सेवा में हमारी याद कैसे आयेगी?"

रुक्मिणी:—"तुम कहना क्या चाहती हो? मैं तो यहाँ बैठी हूँ। मैं कब कहाँ जाने का विचार कर रही हूँ?"

सखियाँ:—"अहाहा! क्या भोली बनती है? जैसे कुछ मालूम ही नहीं। अरे! कुछ ही दिनों बाद चन्देरी के महाराज शिशुपाल की आप पट्टरानी बनने वाली हैं। सारस्वत भाट के साथ आपका टीका भेजा गया था। वह आज ही स्वीकृति लेकर लौट आया है-सारे राजमहल में खुशियाँ मनाई जा रही हैं और आप कहती हैं कि मुझे कुछ मालूम ही नहीं। क्या आप नहीं जानती कि माघकृष्णा अष्टमी की लग्नतिथि भी निश्चित हो चुकी है?

रुक्मिणी:—"मैं शपथपूर्वक कहती हूँ कि मुझे इस विषय में कुछ नहीं मालूम! जो कुछ मालूम हुआ है, वह केवल अभी मालूम हुआ है और सो भी तुम्हारे मुँह से सुनकर ही। किन्तु यदि तुम्हारी बातें सच्ची हैं तो मुझे कहना होगा कि मेरे साथ अन्याय हुआ है।

सखियाँ:—"विवाह भी क्या कोई अन्याय की बात है। लताओं को जैसे वृक्ष का आधार होता है, वैसे ही कन्याओं के लिए वर का आधार होता है। कन्या वर को पाकर वैसे ही प्रसन्न होती है, जैसे लता वृक्ष को पाकर। विवाह तो परम्परा से होता ही आया है—इसे अन्याय मानकर आप दुःखी क्यों हो रही हैं? यह कुछ समझ में नहीं आता!"

रुक्मिणी:—"विवाह मेरे दुःख का कारण नहीं है—दुःख का कारण है भाई रुक्म की मनमानी। टीका भेजने से पहले उसने मेरी राय तक न ली। पिताजी श्रीकृष्ण का मेरे लिए चुनाव करना चाहते थे; किन्तु उसने पिताजी की बात को भरी सभा में अस्वी-कार करके उनका जो अपमान किया है, उससे भी मुझे दुःख का अनुभव हो रहा है। तुम अभी चली जाओ-मुझे विचार करने दो।"

यह सुन कर सखियाँ वहाँ से लौट गईं।

× × ×

महर्षि नारद का नाम काफी प्रसिद्ध है। वे बालब्रह्मचारी थे अर्थात् लँगोट के पक्के थे, इसलिए उन्हें कहीं भी जाने में रुकावट नहीं थी। बड़ी से बड़ी राजसभा से लेकर अन्तःपुर तक उनका बेरोक-टोक प्रवेश था। एक दिन आकाशमार्ग से भ्रमण करते हुए वे श्रीकृष्ण की द्वारका नगरी में आये।

यों तो उनके सद्गुणों के कारण सभी राजागण उनका हार्दिक-सन्मान करते थे, किन्तु श्रीकृष्ण के हृदय में उनके प्रति विशेष आदर था! इसलिए सहज ही मिलाप की दृष्टि से नारदजी राजमहल में जा पहुँचे और आदर-सत्कार पाकर सन्तुष्ट हुए। साथ ही यथोचित आसन पर बैठ कर कुशलप्रश्नादि पूछने के बाद कहा:-"यदि आपकी अनुज्ञा हो, तो मैं अन्तःपुर में जाना चाहता हूँ।"

यह सुन कर श्रीकृष्ण ने कहा:-"कौन रोकता है आपको! खुशी से पधारिये!'

इस प्रकार अनुज्ञा पाते ही नारदजी उठे और अन्तःपुर की ओर चल पड़े। उधर सत्यभामा पट्टरानी थीं, जो स्नानादि से निवृत्त होकर, सोलह श्रृङ्गारों से सुसज्जित होकर अपने श्रृङ्गार-भवन में दीवार पर टँगे हुए, एक विशाल दर्पण में अपना सौन्दर्य निरख रहीं थी, कि पीछे से उसी भवन में नारदजी का प्रवेश हुआ। सामने ही दर्पण था सो प्रविष्ट होते ही उस दर्पण में नारदजी का प्रतिबिम्ब पड़ गया! इस कुरूप चेहरे को देखते ही अपने सौन्दर्य के अभिमान में मत्त बनी हुई महारानी सत्यभामा के मुँह से निकल पड़ा:-"राहू के समान यह कौन है, जो मेरे चन्द्रमुख के निकट आ पहुंचा?"

नारदजी यह सुन कर चुपचाप उलटे पैरों लौट गये। वे सोचने लगे कि श्रीकृष्ण जैसे अभिमान-रहित हैं, वैसी उनकी पट्टरानी नहीं। इसे अपने सौन्दर्य का बड़ा अभिमान है; इसके अभिमान को दूर करने के लिए मुझे कोई उपाय करना चाहिये। निरभिमानी श्रीकृष्ण की पट्टरानी भी निरभिमानी ही होनी चाहिये।

ऐसा सोचते हुए वे राजमहल से बाहर निकल आये। रास्ते में उन्हें एक उपाय सूझा कि यदि कोई ऐसी कन्या मिल जाय कि जिसे अभिमान तो बिल्कुल न हो, पर जो सुन्दरता में सत्यभामा से बढ़ी-चढ़ी हो तो श्रीकृष्ण के साथ उसका विवाह करके सत्यभामा के अभिमान को दूर किया जा सकता है। बस, उपाय सूझते ही लग गये—उसकी सिद्धि में! अर्थात् श्रीकृष्ण के लिए किसी सुयोग्य सुन्दरी कन्या की खोज में चल पड़े।

रास्ते में विदर्भ देश की सीमा पर एक खेत में किसानों की बलिष्ठ और सुन्दर कन्याओं को देखकर नारदजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा कि जिस देश की कृषकबालाएँ इतनी सुन्दरी हों वहाँ राजकन्या कितनी सुन्दरी होगी? हृदय में आशा लिये हुए विदर्भ देश के कुन्दनपुर नगर में नारदजी उतर पड़े और नगर में प्रवेश करते हुए उन्होंने नागरिकों के साथ बातचीत करके जान लिया कि यहाँ के महाराज भीम की राजकन्या रुक्मिणी है, जिसके विवाह के विषय में पिता-पुत्र में विरोध है। वे वहाँ से सीधे राजमहल में महाराज भीम के निकट जा पहुँचे और उनसे आदर-सत्कार पाकर कुशल प्रश्न के बाद पूछने लगे कि "आप को सन्तान कुल कितनी है?"

अन्यायी को हमेशा भय बना रहता है। रुक्मकुमार ने सोचा कि बाबाजी आगये हैं, सो पिताजी के साथ विचार-विमर्श करके रुक्मिणी के विवाह में कोई विघ्न खड़ा न करदें, इसलिए वह भी उस स्थल पर आ पहुँचा। उसे देखते हुए महाराज भीम ने कहा:—"आपकी कृपा से पाँच पुत्र और एक कन्या है। यह रुक्मकुमार सबसे बड़ा है।"

नारदजी:—"क्या राजकन्या की शादी हो चुकी है?"

महाराज भीम इसके उत्तर में कुछ कहें, इसके पहले ही रुक्मकुमार बीच में कूद पड़े ! (अर्थात् बोल उठे):—"ऋषिराज ! शादी तो बहिन की हुई नहीं, किन्तु सगाई हो चुकी है। चन्देरी के परम प्रतापी महाराज शिशुपाल के पास टीका भेजा गया था, जो हमारे सौभाग्य से स्वीकृत भी हो गया है।"

नारदजी:—"हाँ हाँ, मैं जानता हूँ कि शिशुपाल बड़ा प्रभावशाली राजा है।"

वे मन में कहने लगे—"अरे बच्चे ! तू बड़ा भोला है। नारद-लीला का तुझे परिचय नहीं है ! याद रख, तेरे सारे अरमान मिट्टी में मिल जायँगे।"

इसके बाद महाराज भीम से अनुज्ञा लेकर नारदजी ने अन्तःपुर में प्रवेश किया।

१-नारदलीला

लह भी एक कला है, जिसमें नारदजी सबसे अधिक निपुण माने जाते हैं। उनकी उस कला को "नारदलीला" कहते हैं।

नारदलीला कैसी होती है? यह समझने के लिए, एक छोटा-सा दृष्टान्त याद आ रहा है-सुनिये:—

कहते हैं कि एक-बार भ्रमण करते हुए नारदजी किसी सुन्दर शहर में आये। आसपास के घरों की शोभा का निरीक्षण करते हुए वे एक अत्यन्त सुन्दर भवन के पास आकर दरवाजे पर खड़े हो गये। भीतर तरुण-दम्पति का एक जोड़ा हँसी-मजाक में तल्लीन था; आपस में की जाने वाली विनोदक्रीड़ा में दम्पति को इतना रस आ रहा था, कि बाहर खड़े नारदजी को एक-दो बार देख कर भी आदर-सत्कार करने की ओर उन दोनों में से किसी एक का भी ध्यान न गया।

लगभग आध घंटे तक चुपचाप खड़े रह कर नारदजी वहाँ से कुछ आगे बढ़ गये और एक चबूतरे पर बैठ कर अपने तम्बूरे पर संगीत सुनाने लगे।

नारदजी संगीतपद्धति के प्रवर्त्तक माने जाते हैं, इसलिए उनकी स्वरलहरी का तो कहना ही क्या? जो भी सुनता··आकृष्ट

होकर उनके पास आ बैठता ! इस प्रकार धीरे-धीरे सारा चबूतरा मनुष्यों से खचाखच भर गया। नारदजी चारों ओर से जब मनुष्यों के द्वारा घिर गये, तब उन्होंने अपना संगीत बन्द कर दिया। यह देख कर सभी मनुष्य नारदजी के चरणों में प्रणाम करके अपने-अपने निवास की ओर लौट गये।

(उस दम्पति के जोड़े में से) एक नवयुवक भी संगीत सुनने के लिए वहाँ चला आया था। उनकी कला से प्रभावित होकर तथा यह सोचकर कि "यह वही सन्यासी है, जो कुछ समय पहले मेरे घर के दरवाजे पर आया था और मैं भिक्षा या सत्कार भी नहीं प्रदान कर सका !" उसे बड़ा खेद होने लगा और क्षमा माँगने की दृष्टि से सबसे चले जाने के बाद वह नारदजी के निकट पहुंच कर बैठ गया। फिर दोनों में इस प्रकार बातचीत होने लगी:—

नवयुवकः—"मुझे खेद है महाराज ! कि मै उस समय आपको पहिचान न सका-क्षमा कीजिये और मेरा प्रणाम स्वीकारिये।"

नारदजी:—"प्रभुभजन करो और मस्त रहो। तुम्हारी शादी कब हुई ?"

नवयुवकः—इसी वर्ष-आपकी कृपा से एक बड़ी ही सुन्दरी कन्या के साथ मेरा विवाह हुआ है।"

नारदजी:—"तुमने उसमें सिर्फ सौन्दर्य ही देखा है या और भी कुछ ?"

नवयुवकः—"नहीं, मुझे और कुछ नहीं मालूम। आप विशेष ज्ञानी है, इसलिए यदि उसमें कोई दूसरा भी गुण हो तो मुझे बता दीजिये ! बड़ा उपकार मानूँगा।"

नारदजी:—"अरे ! वह सुन्दरी तो है, पर डाकिनी है डाकिनी। यदि मेरी बात की सचाई जाननी हो, तो आज ही रात को गहरी नींद में न सोकर अनुभव कर लेना। वह तुम्हारे शरीर को चाटेगी।"

नव-युवक यह सुन कर आश्चर्य में डूब गया और फिर मुनि को प्रणाम करके बाजार में रवाना हो गया। बाबाजी वहीं बैठे रहे। थोड़ी-सी देर बाद उस युवक की पत्नी भी नारदजी के समीप आई और प्रणाम करके बैठ गई। फिर इस प्रकार दोनों में बातचीत आरम्भ हुई:—

पत्नी:—"बड़ी भूल हुई, जो मैं उस समय आपका स्वागत न कर सकी। कृपा करके अब घर पर पधारिये और मुझे सेवा का मौका दीजिये।"

नारदजी:—"समय बीतने पर वापिस नहीं आता, इसलिए ऐसे प्रसंगों पर मौका चूकने की भूल न किया करो-सत्संग करो और प्रसन्न रहो!"

पत्नी:—"सत्संग करने ही तो मैं आपके निकट आई हूँ। फरमाइये कोई ऐसी बात कि जिससे मेरा भला हो।"

नारदजी:—"संन्यासी निःस्वार्थ होते हैं, इसलिए उन्हें अपने भक्तों की भलाई का पूरा ध्यान रहता है। वे जो कुछ कहेंगे, भलाई के लिए ही कहेंगे। तुम्हें देख कर मुझे बड़ी दया आ रही है। तुम्हारी शादी इसी वर्ष हुई है न?"

पत्नी:—"जी हाँ, बिल्कुल सही कहते हैं--आप। आप तो अन्तर्यामी हैं--सब कुछ जानते हैं--आप से क्या छिपा है? मेरा पति बड़ा सुन्दर है--यदि उसमें और कोई गुण हो तो बताइये!"

नारदजी:—"हाँ, वह सुन्दर तो है, किन्तु उसका शरीर खारा है। इस बात की परीक्षा करना हो तो आज रात को झूठी नींद से सोती रहना और जब मालूम हो कि पति को गहरी नींद आ गई है, तब चुपके--से उठ कर उसके शरीर को जीभ से दो-तीन जगह छू लेना--सब मालूम हो जायगा।"

यह सुनकर पत्नी के भी आश्चर्य का ठिकाना न रहा और प्रणाम करके अपने घर लौट आई। नारदजी भी वहाँ से उठकर शहर के बाहर निकले और जिधर से आये थे, उधर ही लौट गये।

उधर सायंकाल होते ही नवयुवक बाजार से घर आया और भोजनादि से निवृत्त होकर घूमने के लिए घर से निकल पड़ा। आज दोनों के मन में एक-दूसरे के प्रति शंका थी–इस लिए दोनों का मुँह चढ़ा हुआ था। हमेशा हँसी-मजाक करते हुए आनन्द से भोजन किया जाता, किन्तु आज दोनों में से किसी को वैसा आनंद नहीं आया।

रात को ९ बजे युवक घर पर आया और चुपचाप शय्या पर लेट गया। नींद तो लेनी नहीं थी, इसलिए आई भी नहीं; फिर भी यह दिखाना जरूरी था कि नींद आरही है, इसलिए वह खुर्राटे भरने लगा!

उधर पत्नी भी कपट-निद्रा से सोई थी जब उसके कान में खुर्राटे लेने की आवाज आने लगी, तब उसने समझ लिया कि पतिदेव सो गये हैं। नारदजी के कथन की सचाई की परीक्षा करने का यही अवसर है–यह देखकर वह अपनी शय्या से धीरे-धीरे चल कर पति की शय्या के निकट आई। अपनी ओर आती हुई पत्नी को डाकिनी समझ कर मारे भय के पतिदेव के शरीर से पसीना छूट गया था! इसलिए निकट पहुंच कर पत्नी ने जब पति के

शरीर पर ३-४ जगह चाटा तो उसे खारा स्वाद आया। इससे उसे विश्वास हो गया कि मेरे पति सुन्दर भले ही हों पर खारे हैं।

उधर पति को भी विश्वास हो गया कि मेरी-पत्नी डाकिनी है, तभी उसने रातको चुपचाप उठ कर मेरे शरीर को चाटने की कोशिश की थी।

प्रातःकाल उठते ही दोनों में युद्ध शुरू हो गया। यह है, नारद-लीला का एक नमूना।

हाँ, तो कल के प्रवचन में बताया गया था कि महाराज भीम की अनुज्ञा पाते ही नारदजी ने अन्तः पुर में प्रवेश किया।

नारदजी को आते हुए देख कर सभी रानियों ने उन्हें प्रणाम किया। महाराज भीम की वहिन भी वहाँ आई हुई थी और उसे अपने भाई और भतीजे रुक्म के मतभेद की बात भी मालूम थी। उसने भाई के पक्ष को ही ठीक समझा था, किन्तु भाई तो तटस्थ हो गये थे, इसलिए उसके पक्ष को सफलता में काफी कठिनाई थी—आज नारदजी को देख कर उसे सफ़लता की कुछ आशा हुई; क्यों कि वह जानती थी कि नारदजी के हृदय में श्रीकृष्ण के लिये विशेष आदर-भाव है। प्रसन्नता के साथ उसने भी नारदजी को प्रणाम किया। नारदजी ने सबको आशीर्वाद दिया और रुक्मिणी को वहाँ न देख कर जरा विचार में पड़ गये कि इतने ही में रुक्मिणी की भूआ ने कहा:—"ऋषिराज! पधारिये। उस कमरे में रुक्मिणी बैठी है। बच्ची है, समझती नहीं। इसलिए यहाँ नहीं आई। कृपा करके आप ही वहाँ पधारिये और उसे दर्शन देकर कृतार्थ कीजिये।"

नारदजी:—"हाँ-हाँ, जब यहाँ तक आ ही गया हूं तो रुक्मिणी को दर्शन क्यों न दूंगा। चलो! मुझे वहाँ तक ले चलो।"

महाराज की बहिन (रुक्मिणी की भूआ) के साथ नारदजी उस कमरे में आये, जहाँ रुक्मिणी बैठी-बैठी विचार कर रही थी। सखियाँ तो पहले ही वहाँ से रवाना हो चुकी थीं, इसलिए वह अकेली थीं।

रुक्मिणी ने नारदजी के चरणों में प्रणाम किया। इस पर नारदजी ने आशीर्वाद देते हुए कहा:-"कृष्णवल्लभे! चिरंजीव।" इस आशीर्वाद के साथ 'कृष्ण' शब्द को सुनकर रुक्मिणी का मन-मयूर नाच उठा, किन्तु अपनी प्रसन्नता को मन-ही-मन छिपाकर उसने भूआजी से कहा:—'भूआजी! ऋषिराज ने मुझे, जिनकी वल्लभा कहा है, (१) वे कौन हैं? (२) किस वंश के हैं? (३) कहाँ रहते हैं? (४) उनकी अवस्था कितनी है? (५) सौन्दर्य कैसा है? (६) सम्पत्ति कितनी है? (७) उनमें गुण कौन-कौन हैं? (८) उनका परिवार कितना है? (९) उनमें शक्ति कितनी हैं?"

इस पर भूआ ने कहा कि इन सब प्रश्नों का विस्तृत उत्तर तो नारदजी से ही मिल सकेगा। फिर नारदजी से कहा:—ऋषिराज! कृपा करके इस बच्ची की जिज्ञासा शान्त कीजिये!"

नारदजी रुक्मिणी के सौन्दर्य से, विनय से तथा पूछे गये प्रश्नों से काफी प्रभावित हुए। उन्होंने मन ही मन निश्चय कर लिया कि श्री कृष्ण की पट्टरानी बनने के लिए यह बालिका सर्वथा योग्य है।

१०-परिचय और प्रण

कन्या अपने पति में कौन--कौन से गुणों की अपेक्षा रखती है? यह रुक्मिणी के द्वारा पूछे गये नौ प्रश्नों से जाना जा सकता है।

एक हलका--सा सवाल यहाँ उठाया जा सकता है, कि माता--पिता जिसके साथ लग्न करें, उसी के पीछे--पीछे कन्या को चुपचाप चल देना चाहिये। वर के विषय में इतनी पूछताछ करने की क्या जरूरत?

इसके उत्तर में कहना है कि कुछ महीनों तक साथ रहने वाली चवन्नी की हँडिया भी खूब ठोक-बजा कर देखी जाती है तो फिर जो जीवनसाथी बनने वाला है, उस वर के विषय में जानकारी के लिए की जाने वाली पूछताछ को अनावश्यक कैसे माना जाय?

प्रश्नों को सुन कर नारदजी इसलिए प्रसन्न हुए कि उन प्रश्नों से उस बालिका की बुद्धिमत्ता, विचारकता और चतुराई का परिचय मिल गया था।

नारदजी ने कहा:—"बालिके! तुमने जो प्रश्न किये हैं-मैं उनका विस्तार से उत्तर देता हूँ। सुन लो:—

(१) श्रीकृष्ण असाधारण पुरुष हैं। वे तीन खण्ड के शासक हैं।

(२) दूसरा प्रश्न वंश के विषय में है। खानदानी से भी पुरुष के गुणों का अनुमान लग जाता है। जैनसूत्रों में महापुरुष

के विशेषणों में "जाइसम्पन्ने, कुलसम्पन्ने ये शब्द भी आये हैं। मैंने सुना है कि जिसके मातृवंश में सात पीढ़ी तक कोई कलंक न लगा हो, वह "जातिसम्पन्न" कहलाता है और जिसके पितृवंश में भी उसी प्रकार सात पीढ़ी तक कोई कलंक न लगा हो, वह "कुल-सम्पन्न" कहलाता है। श्रीकृष्ण भी जातिसम्पन्न और कुलसम्पन्न हैं। वे यदुवंशी हैं।

(३) तीसरा प्रश्न स्थान के विषय में है। नीतिकार कहते हैं--

कुस्थानस्य प्रवेशेन, गुणवानपि पीड्यते।
वैश्वानरोऽपि लोहस्थः, कारुकैरभिहन्यते॥ १७॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

अर्थात कुस्थान में रहने पर गुणवान् भी दुःख उठाता है, जैसे लोहे में प्रवेश करने पर अग्नि भी लुहारों के द्वारा पीटी जाती है। इसलिए जीवनसाथी के स्थान के विषय में जानकारी जरूर करनी चाहिये। मनुष्य के संस्कारों पर भी स्थान की छाप लगती है। एक मनुष्य जंगल में पैदा हो दूसरा गाँव में और तीसरा किसी शहर में--तो इन तीनों की प्रकृति एक--सी नहीं होगी। झोंपड़ी में पैदा होने वाले की अपेक्षा राजमहल में पैदा होने वाले व्यक्ति के स्वभाव और संस्कारों में काफी अन्तर होता है। मूर्ख भी सन्तों की संगति में रहे तो आदरणीय माना जाता है और विद्वान् भी कचरे की कुण्डी पर बैठे तो पागल समझा जाता है--यही तो स्थान की विशेषता है। श्रीकृष्ण का निवास द्वारका नगरी में है, जिसके विशेषणों में सूत्रकारों ने "पच्चक्खदेवलोगभूया" (प्रत्यक्ष देवलोक के समान) इस शब्द का प्रयोग किया है। यह नगरी सौराष्ट्र देश में है। वहाँ पानी की प्रचुरता है। हवा भी अनुकूल है।

(४) कोई भी कन्या बूढे पति को पसन्द नहीं करती, इसलिए उनकी अवस्था के विषय में जो इसने प्रश्न किया है, सो भी उचित ही है। श्रीकृष्ण न बच्चे हैं और न बूढ़े; वे पूरे नौजवान हैं।

(५) उनका सौन्दर्य अनुपम है। नीलकमल के समान मनोहर कान्ति है-उनकी। सजल मेघ को आकाश मे छाया हुआ देखकर कौन प्रसन्न नहीं होता? सब होते हैं। इसी प्रकार श्रीकृष्ण का रूप लावण्य देखकर सब लोग प्रसन्न हो जाते हैं।

(६) वे तीन खण्ड के शासक हैं, इसी से उनकी सम्पत्ति का अनुमान लगाया जा सकता है, इसलिए उनकी ऋद्धि-समृद्धि के विषय में विशेष क्या कहूं?

(८) उनमें गुणों का तो पार नहीं है। रणक्षेत्र में अर्जुन को उन्होंने जो गीता का उपदेश दिया है उसी से उनके ज्ञान का अनुमान लगाया जा सकता है। राजनीति के तो वे इतने विद्वान हैं कि बड़े-बड़े राजा उनसे सलाह लेते हैं। कन्याओं को वर की विद्या और बुद्धि के विषय में भी जानकारी जरूर करनी चाहिये। क्यों कि मूर्ख पति करोड़ों के धन को भी बर्बाद कर देता है और विद्वान् पति निर्धन हो तो भी धन कमा लेता है।

(८) आठवाँ प्रश्न परिवार के सम्बन्ध में है। श्रीकृष्ण के परिवार में छप्पन करोड़ यादव हैं। महाराज वसुदेव श्वसुर हैं और महारानी देवकी सासू। सासू और श्वसुर से बोझ हल्का हो जाता है। देवकी जब कुँवारी थी, उस समय कंस के छोटे भाई ऐवन्ता मुनि भिक्षार्थ आये थे, किन्तु कंस की पत्नी जीवयशा ने उनकी ओर ध्यान न दिया। उसे अपनी ऋद्धि-समृद्धि का घमण्ड था। यह देख कर मुनि ने कहा:—"इतने घमण्ड में क्यों फूल रही हो? तुम्हारी ननन्द देवकी का सातवाँ पुत्र तुम्हें विधवा बना देगा!" मुनि चले

गये। जीवयशा दुःखी हो गई-रोने लगीं। कंस को जब यह सब मालूम हुआ, तो वह अन्तःपुर में आया और मुनि का सत्कार न करने के कारण जीवयशा को पहले तो फटकारा और फिर सान्त्वना देते हुए कहा कि "घबराओ मत ! मैं पैदा होते ही देवकी के पुत्रों को परमधाम पहुँचाता रहूँगा।"

अन्त में देवकी बहिन की महाराज वसुदेव से शादी हुई तब कंस ने चौपड़ पासे में बहिनोईजी को परास्त करके उनसे यह वचन लेलिया कि बहिन की सारी प्रसूतियाँ मेरे यहाँ होंगी। वसुदेव ने इस वचन का पालन किया।

भाई कंस अपने बच्चों को मारडालता है- ऐसा मालूम होने पर भी सिर्फ पति की आज्ञा का पालन करने के लिए प्रसूति के समय देवकी मथुरा जाने लगी थी। ऐसी पतिपरायणा सास और अपने वचन का पालन करने वाले ससुर दुनिया में बहुत कम होते हैं।

श्रीकृष्ण के भाई बलभद्र हैं और उनकी बहिन सुभद्रा है। सुभद्रा सुप्रसिद्ध धनुर्धर अर्जुन की पत्नी है। इस प्रकार श्रीकृष्ण का परिवार काफी विशाल है।

(६) अन्तिम प्रश्न शक्ति के विषय में है। कोई भी कन्या दुबले-पतले और कमजोर व्यक्ति को अपना पति नहीं बनाना चाहती। इसलिए शक्ति की जानकारी भी कर लेनी चाहिये। श्रीकृष्ण प्रचण्ड शक्तिशाली हैं। उनके पांचजन्य नामक शंख की ध्वनि सुन कर ही शत्रुओं की सेना तितर-बितर हो जाती है, इसीसे उनके पराक्रम का अनुमान लग सकता है।"

नारदजी से श्रीकृष्ण का इस प्रकार विस्तृत परिचय सुन कर रुक्मिणी का मन प्रसन्न हो गया। सूर्य की किरणों से जैसे

कमल विकसित हो जाता है, वैसे ही नारदजी की बातों से रुक्मिणी का चेहरा खिल उठा। उसके चित्त में श्रीकृष्ण-प्रेम का अंकुर था, वह बढ़ कर वृक्ष बन गया।

भूआ ने कहा:—"जो कुछ नारदजी ने कहा है, उसमें जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है। ये मुनि हैं-इन्हें कोई स्वार्थ नहीं होता, इसलिए ये झूठ नहीं बोलते। मनुष्य राग-भय और क्रोध के वश में होने से ही झूठ बोलते हैं, किन्तु मुनि में ये दुर्गुण नहीं होते। जैसा कि गीता में कहा है:—

"वीतरागभयक्रोधः, स्थित धीर्मुनिरुच्यते ॥'

राग, भय और क्रोध से रहित जिनकी बुद्धि स्थिर (अचञ्चल) होती है, उसी को मुनि कहते हैं। इन्हाने श्रीकृष्ण का यथार्थ ही वर्णन किया है।"

इस प्रकार नारदजी की और भूआ की बातें सुन कर रुक्मिणी भी चुप न रही: उसने कहा:-"भूआजी! आपने और ऋषिराज ने जो कुछ कहा है, सो ठीक है; किन्तु मेरी शादी तो किसी और के साथ ठहराई गई है, सो उसका क्या होगा? मैंने सुना है कि टीका भी भेज दिया गया है और इतना ही क्यों? वह स्वीकृत भी हो चुका है, इसलिए मेरी क्या दशा होगी?"

इस पर भूआ ने कहा:—"हाँ, मैंने भी सुना है, कि टीका स्वीकृत हो चुका है, किन्तु तुम्हारी इच्छा न हो तो वह कार्य हो नहीं सकता। संकल्प दृढ़ हो तो कठिनाई में भी रास्ता निकल ही आता है। अपनी इच्छा के अनुकूल जीवन साथी चुनने का हर कन्या को अधिकार है।"

फिर नारदजी बोले:—"तुम चिन्ता मत करो। मेरी लीला का अभी तुम्हें पता नहीं है और श्रीकृष्ण की सामर्थ्य का भी। श्रीकृष्ण के लिये कोई कार्य असम्भव नहीं है। तुम अपना निश्चय दृढ़ कर लो।"

यह सुनते ही प्रेम-विह्वल होकर रुक्मिणी ने अपने हृदय के विचार यों प्रकट किये:—"भूआजी! कल्पवृक्ष को छोड़कर कर्णिकार (कणेर), हाथी को छोड़कर गधा, मीठा और शीतल जल छोड़ कर खारा और गर्म जल, चिन्तामणि रत्न को छोड़ कर कंकर कौन चाहेगा? श्रीकृष्ण जैसे शेर को छोड़ कर शिशुपाल जैसे गीदड़ की शरण में मैं नहीं जा सकती। सूर्य, चन्द्र और ऋषिराज नारद की साक्षी से मैं आपके सामने यह प्रण करती हूं कि श्रीकृष्ण ही मेरे प्राणनाथ हैं, उनके अतिरिक्त और किसी पुरुष को मैं पति-रूप में स्वीकार नहीं करूँगी। प्राण देकर भी मैं अपने प्रण से कभी विचलित नहीं हो सकती। भले ही मुझे जीवनभर अविवाहित रहना पड़े! श्रीकृष्ण को छोड़कर शेष सभी पुरुषों को आज से मैं भाई और पिता के समान समझूँगी यह मेरा दृढ़ निश्चय है!"

रुक्मिणी की आँखों से प्रेम के आँसू बह निकले। प्रतिज्ञा सुनकर नारदजी वहाँ से चल पड़े!

११—नारदजी द्वारका में
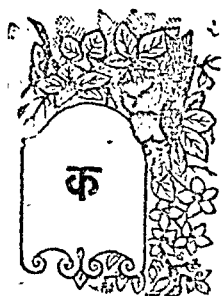
लाकार क्या नहीं कर सकता? जो अपनी कला से मनुष्यों का हृदय प्रभावित कर सकता है, वही सच्चा कलाकार है। नारदजी कलहकला में तो कुशल थे ही, चित्रकला में भी कुशल थे।

कुन्दनपुर के राजमहल से बाहर निकलते हुए नारदजी ने सोचा कि रुक्मिणी तो प्रतिज्ञाबद्ध हो चुकी है. किन्तु श्रीकृष्ण का रुक्मिणी के प्रति अनुराग जागृत करना जरूरी है। उन्होंने रुक्मिणी का एक सुन्दर चित्र बनाया और उसे अपने साथ लेकर सीधे द्वारका नगरी की ओर चल दिये।

बाजार में माल खूब हो, ग्राहक भी खड़े हों, किन्तु यदि दलाल न हो तो व्यापार में सुविधा नहीं होती। दलाल से व्यापारी और ग्राहक दोनों को लाभ होता है, दलाल की भी स्वार्थसिद्धि हो जाती है, किन्तु दलाल यदि निःस्वार्थ हो, तो फिर कहना ही क्या? श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के बीच यहाँ नारदजी दलाल बने हुए हैं, जो पूरे निःस्वार्थ हैं। उन्होंने जो सोचा है, वह कार्य पूरा न हो तब तक उन्हें चैन कहाँ?

"प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति ॥"

महापुरुष प्रारम्भ किये हुए कार्य को तब तक नहीं छोड़ते, जब तक पूरा न हो जाय।

द्वारका के राजमहल में प्रवेश करके नारदजी वहीं जा पहुँचे जहाँ श्रीकृष्ण अपने दरबारियों के साथ बैठे थे और राजनीति के विषय में विचार-विमर्श कर रहे थे। नारदजी को आते हुए देख कर श्रीकृष्ण तथा अन्य सभी सभ्यों ने खड़े होकर उनका स्वागत किया। कुशल-प्रश्न के बाद आने का प्रयोजन पूछने पर नारदजी ने श्रीकृष्ण को धीरे से कहा:—"एकान्त में चलें तो दिल खोल कर मैं कुछ कह सकूँगा।"

श्रीकृष्ण सभा से उठकर नारदजी के साथ एकान्त स्थल में पहुँच गये और फिर विनय-पूर्वक बोले:—"यह एकान्तस्थल है। अब फरमाइये! मेरे लिए क्या आज्ञा है?"

नारदजी:—"आज्ञा तो कुछ नहीं है। मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ।"

श्रीकृष्ण:—"खुशी से पूछिये! अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर देने की कोशिश करूँगा।"

नारदजी:—"कन्या जिस पुरुष से विवाह नहीं करना चाहती, वह पुरुष यदि जबर्दस्ती उसे अपनी बनाने की कोशिश करे, तो क्या यह उचित है?"

श्रीकृष्ण—"सर्वथा अनुचित।"

नारदजी:—'यदि उस परिस्थिति में माता पिता या भाई जबर्दस्ती उस पुरुष के साथ विवाह करना चाहें कि जिसे कन्या न चाहती हो, तो?"

श्रीकृष्णः"—विवाह तो वर और कन्या दोनों की परस्पर इच्छा से ही होना चाहिये। यदि उन दोनों में से कोई एक भी दूसरे को जीवनसाथी बनाना न चाहता हो और माता-पिता जबर्दस्ती उनका सम्बन्ध जोड़ने की कोशिश करें तो यह उनका अपराध माना जायगा !"

नारदजीः—"माता-पिता या भाई जिसके साथ अपनी कन्या का विवाह करना चाहते हों, वह पुरुष भी उस कन्या को चाहता हो, किन्तु वह कन्या यदि किसी अन्य पुरुष को चाहती हो तो ऐसे समय म जिसे कन्या चाहती है, उस पुरुप का क्या कर्त्तव्य है ?"

श्रीकृष्णः—"पुरुप भले ही कन्या को चाहता हो, किन्तु यदि कन्या उसे नहीं चाहती हो, तो उससे जबर्दस्ती विवाह करने वाला दण्डनीय माना जायगा ! इतना ही नहीं, उस कार्य में सहयोग देने वाले माता-पता-भाई आदि भी दण्डनीय माने जायँगे ! और वैसी परिस्थिति में जिसे कन्या चाहती हो, उस पुरुप का कर्त्तव्य है कि कन्या पर किये जाने वाले अन्याय से उसकी रक्षा करे।"

यह सुनते ही नारदजी ने चित्र निकाला और श्रीकृष्ण के सामने फैला दिया। चित्र देख कर श्रीकृष्ण ने पूछाः—"यह किसी नारी का चित्र है या अप्सरा का ? इसके सौन्दर्य के सामने मेरे अन्तःपुर की हजारों रानियों का सौन्दर्य भी फीका मालूम हो रहा है ! कला की दृष्टि से इसके चित्रकार की जितनी तारीफ की जाय, उतनी ही थोड़ी मालूम होगी !"

नारदजीः—"इस चित्र में ऐसी क्या खूबी है ? बताइये !"

श्रीकृष्ण:—"खूबियाँ तो खूब हैं-क्या क्या बताऊँ? इसके सौन्दर्य ने मेरा मन मोहित कर लिया है। अपने सुन्दर नेत्रों से यह हरिणी का उपहास कर रही है। ऐसा मालूम होता है कि इस को वेणी की समानता में अपने पिच्छ को तुच्छ मान कर मयूर जंगल में भाग गये। इस कन्या की पतली कमर को देख कर सिंह गुफाओं में जा बसे मुख की शोभा से लज्जित होकर चन्द्र आकाश में चला गया। सारे शरीर की कान्ति सोने जैसी है। मुझे इस कन्या का परिचय शीघ्र बताइये और यह भी बताइये कि यह अविवाहित है या विवाहित?"

नारदजी:—"यह अविवाहित कन्या है और इसी के विषय में मैंने आपसे इतनी बातें पूछी थीं। आपके गुणों की प्रशंसा सुन कर इसने प्रतिज्ञा करली है कि 'श्रीकृष्ण को ही मैं पतिरूप में स्वीकार करूँगी उनके सिवाय दुनिया-भर के सारे स्त्री-पुरुष मेरे लिए पिता और भाई के समान हैं।' इसके पिता महाराज भीम भी इसका विवाह आपके साथ ही करना चाहते थे, किन्तु इसके बड़े भाई युवराज रुक्म और इसकी माता शिखावती-इन दोनों की इच्छा है कि इसका विवाह चन्देरी के महाराज शिशुपाल के साथ हो। गृहकलह की आशंका से इसके पिता तटस्थ हो गये हैं। माता और भाई ने शिशुपाल के पास टीका भी भेज दिया है और माघकृष्णा अष्टमी की लग्नतिथि भी निश्चित हो चुकी है यदि माता और भाई की ओर से उस तिथि को शिशुपाल के साथ जबर्दस्ती विवाह करने की चेष्टा की जायगी तो कन्या अपने प्रण की रक्षा के लिए प्राणों की बाजी लगा देगी-ऐसी पूरी सम्भावना है!"

श्रीकृष्ण:—"यदि ऐसा है, तो यह अन्याय मैं नहीं होने दूंगा। इसके लिए मुझे शिशुपाल से युद्ध भी करना पड़ेगा! जो

भूआ का लड़का होने से मेरा भाई है। भाई से युद्ध करना उचित नहीं मालूम होता और फिर उसके पास टीका भी तो भेजा गया है, इसलिए लग्नतिथि पर उसका कुन्दनपुर में आना भी अस्वाभाविक नहीं है। कम से कम उसे पहले यह बात तो मालूम हो ही जानी चाहिये कि इस टीके से महाराज भीम असहमत हैं और यह सूचना भी उसके पास पहुंचाई जानी चाहिये कि रुक्मिणी उसे स्वप्न में भी पतिरूप में स्वीकार करना नहीं चाहती! जिससे कि युद्ध की परिस्थिति टल जाय।"

नारदजी:—"टीके में महाराज भीम के हस्ताक्षर नहीं थे, इसलिए शिशुपाल को यह तो मालूम हो ही गया होगा कि इस टीके से कन्या के पिता सहमत नहीं हैं। अब रही रुक्मिणी के न चाहने की बात, सो यह सूचित करना मेरा काम है! आगे आप जैसा उचित समझें, करें।"

ऐसा कह कर नारदजी ने चित्र समेटा और द्वारिका के राजमहल से निकल कर चन्देरी की दिशा में प्रस्थान किया।

आँखों के सामने से चित्र हटते ही श्रीकृष्ण को ऐसा मालूम होने लगा, जैसे उनकी कोई आवश्यक वस्तु खो गई हो। सोते-बैठते-चलते उन्हें केवल उसी चित्र की याद आने लगी। उनकी मानसिक-वेदना की तुलना कुछ-कुछ उस नौजवान से की जा सकती है कि शादी होने के बाद ही जिसकी पत्नी पीहर चली गई हो। एक कवि के शब्दों में प्रियावियोग की वेदना कैसी होती है? सो सुनिये:—

चन्द्रश्चण्डकरायते मृदुगतिर्वातोऽपि वज्रायते,
माल्यं सूचिकुलायते मलयजालेपःस्फुलिंगायते।

रात्रिःकल्पशतायते विधिवशात्प्राणोऽपि भारायते,
हा हन्त ! प्रमदावियोगसमयःसंहारकालायते ।१८॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार:

अर्थात् प्रिया--विरह के समय चन्द्र भी सूर्य के समान असह्य मालूम होने लगता है-मन्द पवन भी वज्र के समान लगता है-कोमल माला भी सूइयों के समूह के समान चुभती है-चन्दन का लेप भी अंगारों के समान जलाता है-रात सौ कल्प के समान लम्बी हो जाती है दुर्भाग्य से प्राण भी भार स्वरूप मालूम होते हैं-इस प्रकार प्रलयकाल छा जाता है ।

इस श्लोक से विरहवेदना का अनुमान लगाया जा सकता है । नारदजी के आने से पहले श्रीकृष्ण प्रसन्न थे और उनके जाते ही दुःखी होगये तो क्या नारदजी ने श्रीकृष्ण को दुःखी बना दिया ? नहीं-नहीं, सौन्दर्यासक्ति ही उन्हें दुःखी बना रही है । उनकी चिंता का एक कारण यह भी है कि रुक्मिणी पर होने वाले अन्याय को रोकने के लिए उन्हें अपने छोटे भाई से युद्ध करना पड़ेगा ! अस्तु ।

इधर बड़े भाई बलभद्रजी को किसी तरह श्रीकृष्ण की उदासीनता का कारण मालूम हो गया तो उन्होंने समझाया:-"भाई ! चिन्ता मत करो । यों तो भाई शिशुपाल को समझाने के लिए यहाँ से नारदजी चन्देरी गये ही हैं, इसलिए आशा है, युद्ध टल जायगा और यदि शिशुपाल नहीं माना तो हम कहाँ पीछे रहने वाले हैं ? अन्याय से रक्षा करना हमारा धर्म है । विचार सिर्फ यही आता है कि टीका भेज कर शिशुपाल को जैसे आमन्त्रित किया गया है, वैसा हमें कोई आमन्त्रण अब तक नहीं मिला । बिना किसी आमंत्रण के ऐसे मामलों में कूद पड़ना भी समझदारी नहीं मानी जाती । इसलिए हमें इस समय तटस्थ रह कर ही देखते रहना चाहिये कि

आगे क्या-क्या होता है ? कुन्दनपुर से जरा-सा सन्देश या चिट्ठी के आते ही हम लोग दौड़ पड़ेंगे और रुक्मिणी की अन्याय से रक्षा करेंगे।"

बड़े भाई की इन बातों से श्रीकृष्ण की उदासीनता और चिन्ता काफी अंशों में हट गई। अब दोनों भाई कुन्दनपुर से आने वाले सन्देश की उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे।

१२-समझाने का प्रयत्न
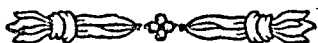
लचई (नकली) सोने में चमक भले ही असली सोने से अधिक हो, फिर भी अग्नि-परीक्षा वह नहीं सह सकता ! अपनी गली में कुत्ता भी शेर होता है, किन्तु शेर के सामने वह भौंक नहीं सकता ! शिशुपाल को अपनी शक्ति का घमण्ड है, किन्तु श्रीकृष्ण के सामने वह टिक नहीं सकता !

यद्यपि शिशुपाल स्वयं अपनी कमजोरी समझता है कि श्रीकृष्ण के सामने उसका अपना बल नगण्य है, फिर भी वह यह बात प्रकट नहीं करना चाहता, क्योंकि इससे उसके गौरव को धक्का लगता है। दूसरी बात यह है कि बचपन में सुनी हुई भविष्यवाणी के अनुसार श्रीकृष्ण के हाथों से उसकी मृत्यु होने वाली है, इसलिए भी वह श्रीकृष्ण को अपना शत्रु समझ कर हर तरह से उन्हें नष्ट करने की सोचता रहता है। रुक्मिणी से विवाह का प्रसंग भी एक ऐसा सुअवसर है कि जिसका लाभ उठा कर वह अपनी तथा सहायकों की सेना के साथ युद्ध करके श्रीकृष्ण को जान से मार सकता है। ऐसे मौके को शिशुपाल जैसा राजनीतिज्ञ भला कैसे चूकता ?

उसने तुरन्त निमन्त्रण भेज कर अपने अधीन निन्यानवे राजाओं को सेना-सहित चन्देरी में बुलवा लिया और उन राजाओं

के साथ विचार-विमर्श कर ही रहा था कि उधर से नारदजी आ पहुँचे। शिशुपाल-सहित सौ राजाओं ने अपने-अपने आसन से खड़े होकर उनका यथोचित स्वागत किया। फिर यथास्थल बैठ कर नारदजी ने कहाः—"राजन्! राजमहल में बड़ी चहल-पहल दिखाई दे रही है। ऐसा मालूम होता है कि जैसे किसी के विवाह की तैयारी हो रही है।"

शिशुपालः—"जी हाँ, आपका अनुमान बिल्कुल सही है। आपकी कृपा से मेरे विवाह की तैयारियाँ चल रही हैं। शीघ्र ही बरात क़ुन्दनपुर जाने वाली है। वहाँ के महाराज भीम की इकलौती कन्या रुक्मिणी का टीका आया था, जो स्वीकार किया जा चुका है।"

नारदजीः—"हाँ हाँ, मैंने सुना है कि राजकन्या रुक्मिणी अप्सरा के समान सुन्दर है। उसके साथ आपका सम्बन्ध हो, इससे बढ़ कर आपका सौभाग्य और क्या होगा? टीके के साथ उसकी कुण्डली तो आई होगी न? लाइये तो, जरा देख लूँ।"

कुण्डलियाँ (अपनी और रुक्मिणी की) मँगवा कर ऋषि-राज के सामने रखते हुए शिशुपाल ने कहाः—"लीजिये महाराज! जरा ध्यान से देख कर बताइये कि कन्या में और क्या-क्या विशेषताएँ हैं? टीके के साथ 'माघकृष्णा अष्टमी की लग्नतिथि निश्चित की गई है' ऐसी सूचना भी आई थी, सो आशा है कि वह तिथि मंगलरूप ही होगी!

ध्यानपूर्वक कुण्डली देखकर चेहरे पर शिकन लाते हुए नारद जी ने कहाः—"राजन्! साधु निष्पक्ष होते हैं-निस्वार्थ होते हैं, इसलिए सच्ची बात कहने में डरते नहीं। ध्यान पूर्वक कुण्डलियों को देखने से मालूम हुआ कि दोनों का मेल ही नहीं बैठता! कन्या

असाधारण है और उधर श्रीकृष्ण असाधारण पुरुष हैं, इसलिए श्रीकृष्ण से ही इस रुक्मिणी की शादी होगी। महाराज भीम भी यही चाहते हैं कि श्रीकृष्ण के साथ इसका विवाह हो और मैंने यह भी सुना है कि रुक्मिणी भी श्रीकृष्ण के साथ ही पाणिग्रहण करने का प्रण कर चुकी है! यदि आप कुन्दनपुर गये तो उधर से श्रीकृष्ण भी आयेंगे ही और तब युद्ध में पराजित और अपमानित होकर आपको खाली हाथ लौटना पड़ेगा! इसलिये मैं चाहता हूँ कि आप कुन्दनपुर जाने का विचार ही छोड़ दें।"

यह सुनकर शिशुपाल का पारा ठिकाने न रहा—गुस्सा आ-गया; किन्तु फिर विचार आया कि यदि इसके स्थान पर कोई दूसरा आदमी होता तो उसे इस समय मृत्युदण्ड ही देता! परन्तु इस बाबा को क्या दूं? खैर, किसी तरह अपनी निर्भयता तो प्रकट करना ही चाहिये। जरा ठहाका मार कर बोला:—'वाह--वाह! क्या सुनाया आपने? वीरों को कभी युद्ध का डर नहीं होता! वीरों की गति में ग्रह-नक्षत्र बाधक नहीं बन सकते! आपने युद्ध में होने वाली पराजय का डर बता कर यह सिद्ध करना चाहा है कि मैं कायर हूँ और ये ६६ राजा बैठे हैं, सो ये भी सब कायर हैं! आपने कुण्डलियाँ तो देख लीं, किन्तु मेरी और इन वीरों की सेनाएँ नहीं देखी हैं—इसी लिए आपके मुँह से ऐसी बातें निकल गई हैं। खैर, अब आप पधारिये और बाहर खड़ी हुई सुविशाल सेना को देख कर जिधर से आये थे, उधर ही चले जाइये।"

इस प्रकार रूखा-सा उत्तर सुन कर भी अपने मन को शान्त रखते हुए नारदजी बोले:—"राजन्! मैंने तो आपकी भलाई के लिए सिर्फ इसलिए कि आपका अपमान न हो-जो कुछ सचाई थी, कह दी। मैं जानता हूं कि आप बड़े वीर हैं, इसलिए करेंगे वही, जो आपकी इच्छा होगी! किन्तु बुद्धिमत्ता वैसा करने में है,

कि जिससे बाद में पछताना न पड़े और इसके लिए यह जरूरी है, कि आप रुक्मिणी की प्रतिज्ञा का विचार करें ! बस, यही बात सुनाने के लिए मैं यहाँ आया था, अब जाता हूँ।"

ऐसा कह कर शिशुपाल के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही नारदजी चुपचाप उठ कर रवाना होगये।

"पक्षपाती था नारद ! यह साधारण नीति है कि जो अपने को विद्वान् कहता है वह मूर्ख होता है। नारद अपने को निष्पक्ष कह रहा था, इसीसे सिद्ध होता है कि वह पक्षपाती था और आगे चल कर उसने जो कुछ कहा, उससे उसका पक्षपात प्रकट भी होगया। चलो, अच्छा हुआ कि वह चला गया।"

यह कह कर सभा बरखास्त करके शिशुपाल रात को अपने शयनकक्ष में आया, किन्तु उसे नींद नहीं आ रही थी। बार-बार उसे नारदजी के इस वाक्य का स्मरण आने लगा-"यह जरूरी है कि आप रुक्मिणी की प्रतिज्ञा का विचार करें !......यह जरूरी है कि आप रुक्मिणी की प्रतिज्ञा का विचार करें......यह जरूरी०"

रह-रह कर उसके कानों में केवल उसी वाक्य की ध्वनि सुनाई देती और उसका मन अशान्त हो जाता !

शिशुपाल की पत्नी ने भी सारी बातें सुन रक्खी थीं, इसलिए रात्रि का शयनकक्ष में पहुंचते ही साधारण वातचीत बाद कुन्दनपुर का प्रसंग निकाल कर समझाते हुए कहा:—"नाथ ! भौजाई ने, ज्योतिषी ने और नारदजी ने कुन्दनपुर न जाने की सलाह दी है और मेरी भी यही प्रार्थना है कि आप इनकी सलाह मान लीजिये। यदि आप वहाँ गये, युद्ध हुआ, पराजित और अपमानित होकर लौटे तो फिर मुझे 'वीर-पत्नी" कौन कहेगा ?

सब सखियाँ ताना मारेंगी और मुझे "कायर--पत्नी" कहेंगी ! इस प्रकार मेरा जीवन धिक्कार हो जायगा। मुझे अपने सोभाग्य के छिनने का भी डर है। एक बात यह भी है कि विवाह के समय आपने पत्नी के मन के विरुद्ध कोई कार्य न करूँगा -ऐसी प्रतिज्ञा की थी और इस समय आप जो कुछ कर रहे हैं, वह मेरे मन के विरुद्ध है--इन सब बातों पर विचार करके आप कुन्दनपुर जाने का कार्यक्रम रद्द कर दें--ऐसी मैं हाथ जोड़ कर आप से प्रार्थना करती हूँ।"

यह सुन कर शिशुपाल ने उत्तर दिया:—'प्यारि ! तुम्हारे मुँह से तो प्यारी बातें ही निकलनी चाहिये; आज ये कड़वी बातें कैसे निकल रही हैं ? मालूम होता है कि भौजाई ने तुम्हें बहका दिया है ! यह भी हो सकता है कि तुम सौत के डर से ऐसी बातें कह रही होगी ! खैर, कारण कुछ भी हो, किन्तु जो शंकाएँ तुमने उठाई हैं, उनका समाधान करना जरूरी है। सलाह निष्पक्ष की मानी जाती है-इधर भौजाई, ज्योतिषी और नारदजी-ये तीनों ही श्रीकृष्ण के पक्षपाती हैं, इसलिए इनकी सलाह का कोई मूल्य नहीं। इधर राजा लोग आ गये हैं, टीका भी स्वीकार कर लिया है, लग्नतिथि भी निश्चित हो गई है-ऐसी परिस्थिति में यदि कुन्दनपुर नहीं जाऊँ तो लोग क्या कहेंगे ? कहेंगे कि श्रीकृष्ण के डर से शिशुपाल नहीं आया ! इसलिए बड़ा "कायर" है। इस प्रकार कुन्दनपुर न जाने से ही तुम्हे "कायर-पत्नी" कहलाने का मौका मिलेगा, जाने से नहीं। सौभाग्य छिनने की बात भी तुम्हारे मुँह से शोभा नहीं देती। क्षत्राणियाँ अपने प्राणनाथ को हँसते-हँसते समरांगण में भेजती हैं ! अब रही बात विवाह के समय की गई प्रतिज्ञा की, सो जैसे तुम्हारे मन के विरुद्ध न करने की प्रतिज्ञा मैंने की थी, वैसे ही मेरे मन के विरुद्ध न करने की प्रतिज्ञा तुमने भी की थी। यहाँ

कुन्दनपुर का कार्यक्रम रद्द करना मेरे मन के विरुद्ध है, इसलिए वैसी सलाह देकर तुम खुद अपनी प्रतिज्ञा तोड़ने की भूल कर रही हो ! जो सर्वथा अनुचित है।"

पत्नीः—"नाथ ! मुझे सौत का डर नहीं है, यदि मुझ में थोड़ी-बहुत योग्यता हुई तो मैं सौत को भी बहिन बना लूँगी। वह आयगी तो मेरे काम में हाथ ही बटायगी ! किन्तु मुझे तो केवल आपके अपमान.......... "

शिशुपालः—"बस, बस, चुप रहो। महापुरुष मान-अपमान का विचार नहीं किया करते ! सिर्फ कर्त्तव्य का विचार ही करते हैं। तुम्हें तो प्रसन्न ही होना चाहिये कि तुम्हारा हाथ बटाने आने वाली है-रुक्मिणी ।"

इस प्रकार नारदजी और पत्नी ने उसे समझाया।

१३—बरात चली !

कवि कहते हैं:—

अथवाऽभिनिविष्टबुद्धिषु,
व्रजति व्यर्थकतां सुभाषितम्।
रवि-रागिषु शीतरोचिषः,
करजालं कमलाकरेष्विव ॥१६॥

जिनकी बुद्धि में किसी प्रकार का आग्रह होता है, उनके लिए उपदेश व्यर्थ है। जैसे सूर्य से प्रेम करने वाले कमल-समूह के लिए चन्द्रमा का किरण समूह व्यर्थ है।

शिशुपाल को भौजाई ने समझाया था, नारदजी ने भी और उसकी पत्नी ने भी, किन्तु उसके विचारों में किसी प्रकार का परिवर्त्तन न हुआ। रुक्मिणी की प्रतिज्ञा वाली बात जब से उसने नारदजी के मुँह से सुनी, तब से उसके हृदय में खटका जरूर बैठ गया था! किन्तु अपने मन में छिपे हुए इस खटके को उसने प्रकट नहीं होने दिया। मन में आग जल रही थी, किन्तु उसके चेहरे पर पहले जैसी ही तेजस्विता और मुस्कान थी।

लग्नतिथि को एक सप्ताह बाकी रह गया था, किन्तु रुक्म के सन्देश के अनुसार शिशुपाल को जल्दी पहुँचना जरूरी था। इसलिए प्रातःकाल उठते ही प्रस्थान की जोरदार तैयारियाँ शुरू कर दी गईं। मंगल गीत गाये जाने लगे। यथाविधि उबटन आदि

लगवा कर सुगन्धित जल से स्नान करके शिशुपाल ने बहुमूल्य वस्त्रालंकार धारण किये। सिर पर विशेष प्रकार का रत्नजटित मुकुट (मौड़) धारण कर लिया। सेनाएँ शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित की गईं। मंगलवाद्य से सारा शहर गूँजने लगा। दूल्हे का वेश सजधज कर शिशुपाल ने सोचा कि अब प्रस्थान करने से पहले भौजाईजी को प्रणाम करके उनका आशीर्वाद ले लेना चाहिये।

यहाँ जरा आशीर्वाद के विषय में थोड़ा-सा विचार करें। आशीर्वाद मिलता है-सेवा से। भूखे को भोजन, प्यासे को पानी, निराश्रित को आश्रय, भयभीत को अभय देने से उनका आशीर्वाद मिलता है। माता-पिता की सेवा करने से उनका आशीर्वाद मिलता है। गुरुजनों की आज्ञा का पालन करने से उनको आत्मा का आशीर्वाद मिलता है। यहाँ शिशुपाल भौजाई का आशीर्वाद तो पाना चाहता है, किन्तु उसकी सलाह नहीं मानना चाहता! ऐसी हालत में उसे आशीर्वाद मिलेगा कैसे? अस्तु।

दूर से ही शिशुपाल को आते देख कर भौजाई ने कहा:— "आइये देवरजी! आइये। मैं तो समझ रही थी कि उस दिन की बातों से आप रुष्ट होगये होंगे, किन्तु आप उस प्रसंग को भूल कर फिर से मेरे पास आ गये-इससे मुझे प्रसन्नता हुई। आप दूलहे के वेश में बड़े अच्छे मालूम होते हैं। लग्नतिथि टालने के लिए मैंने उस दिन जो कहा था, सो आपको याद ही होगा और विशेष विचार करने पर आपको वह उचित भी मालूम होता होगा। इसलिए मैं समझती हूँ कि इस तिथि के दिन आपने मेरी बहिन से विवाह करने का ही निश्चय किया होगा!"

शिशुपाल:—"आपको तो बस एक ही बात सूझ रही है कि-मेरी बहिन से शादी कर लीजिये! बार-बार यही कहती हैं।

अपने स्वार्थ के कारण आपको सचाई नहीं दिख पा रही है। राजालोग कुन्दनपुर जाने के लिए आये हैं-टीका भी कुन्दनपुर आया है और मैं जाऊँ किसी दूसरी जगह ! क्या यही समझदा है ?"

भौजाई:—"आपको अपनी जिद के कारण मेरी बात कड़व मालूम हो रही है, किन्तु याद रखिये कुन्दनपुर जाने पर श्रीकृष्ण से युद्ध अवश्य करना पड़ेगा और उसमें आपकी पराजय भी होगी निन्यानवे राजाओं की विशाल सेना का आपको अभिमान है किन्तु आग की जरा-सी लपट से जैसे पहाड़ के बराबर घास क ढेर भी राख बन जाता है, वैसे ही अकेले श्रीकृष्ण के सामने यह सारी सेना नष्ट हो जायगी। इसलिए मेरी तो उस दिन भी यही राय थी और आज भी मैं यही राय देती हूँ कि वहाँ से अपमानित होकर आने की अपेक्षा न जाना ही अच्छा है। अब तक आपकी जो कुछ प्रतिष्ठा बनी हुई है, वह भी कुन्दनपुर जाने पर छिन जायगी। बुद्धिमत्ता इसी में है कि भावष्य का विचार करके कोई कार्य किया जाय।"

शिशुपाल:—"आपने तो उपदेश ही देना शुरू कर दिया ! मैं आपका उपदेश नहीं चाहता, आशीर्वाद चाहता हूँ।"

भौजाई:—"आप उपदेश नहीं चाहते, आशीर्वाद चाहते हैं; वैसे ही रुक्मिणी आपको नहीं चाहती, श्रीकृष्ण को चाहती है ! कल ही नारदजी ने इस विषय में आपको गम्भीर संकेत किया था। क्या भूल गये कि रुक्मिणी श्रीकृष्ण को जीवनसाथी बनाने का प्रण कर चुकी है ?"

भौजाई ने इस बात को कह कर मानो शिशुपाल की नाड़ी ही दबा दी हो। यही तो उसके दिल का खटका था ! अब उसे कोई

उत्तर नहीं सूझा। आखिर गुस्से में भान भूल कर वह बोल उठाः- "मैं आपको समझदार मान कर आप से सदा सलाह लिया करता था, किन्तु आज मालूम हुआ कि आप कैसी हैं ? इस मंगल-प्रसंग पर मैं आपको अधिक कड़े शब्द कहना नहीं चाहता। सिर्फ यही कहता हूँ कि यदि मेरी बात आपको पसंद न हो, तो अपने पीहर चली जाइये !"

सज्जनो ! नीतिकारों ने ठीक ही कहा है:—"उपदेशो हि मूर्खाणाम्, प्रकोपाय न शान्तये।" इस विषय में गौरैया (पक्षी) का एक दृष्टान्त बहुत प्रसिद्ध है। वह अपने लिए बड़े परिश्रम से घोंसला बनाती है, जो अन्य पक्षियों के घोंसलों की अपेक्षा अधिक टिकाऊ और सुन्दर होता है। वर्षाऋतु में जब पानी बरसता है, तो गौरैया अपने घोंसले में जा बैठती है।

एक दिन बादल पानी बरसा रहा था। एक दिन वृक्ष की शाखा पर बने हुए अपने घोंसले में एक गौरैया बैठी थी। उसने देखा कि उसी वृक्ष की एक शाखा पर कहीं से एक बन्दर भी आ कर बैठ गया है और बरसते हुए पानी की धाराओं से गीला होकर मारे ठंड के धूज रहा है ! यह दृश्य देख कर गौरैया को दया आगई। उसने सहानुभूतिपूर्वक प्रेम से समझाते हुए कहाः-"आपने मनुष्य जैसा शरीर पाया है; फिर भी ठंडी के कारण ठिठुर रहे हैं ! मैंने जैसे मेहनत करके अपने रहने के लिए यह घोंसला बनाया है, वैसे ही आप भी थोड़ी-सी मेहनत करके छोटी-सी झोंपड़ी क्यों नहीं बना लेते ?"

इस पर क्रुद्ध होकर बन्दर बोलाः—"छोटे मुँह बड़ी बात कहते हुए शर्म नहीं आती ? मुझे शिक्षा देने चली है ! ठहर तुझे अभी मजा चखाता हूँ।"

ऐसा कहकर बन्दर ने गौरैया का घोंसला तोड़ कर उसके सारे तिनके इधर-उधर बिखेर दिये।

यहाँ गौरैया के स्थान पर भौजाई को समझ लीजिये जिसके उपदेश को सुनकर शिशुपाल रूपी बन्दर को क्रोध आ गया है। बन्दर ने गौरैया का घोंसला तोड़ दिया था, इसी प्रकार यहाँ भी शिशुपाल ने भौजाई को राजमहल छोड़ कर पीहर चली जाने का आदेश दे दिया है।

शिशुपाल की बात सुनकर भौजाई ने कहाः—"देवरजी! मैं ससुराल में भी रह सकती हूँ और पीहर में भी। मेरे लिए दोनों जगहों पर अधिकार है, किन्तु मेरी आत्मा कह रही है कि आपका अधिकार रुक्मिणी पर नहीं हो सकता! इसलिए मैं एक बार फिर से आपकी भलाई के लिए कहती हूँ कि आप कुन्दनपुर जाने का कार्य-क्रम स्थगित करदें।"

शिशुपालः—"चुप रहिये! हमारी भलाई-बुराई हम खुद समझ सकते हैं। बरात कुन्दनपुर जायगी-जरूर जायगी-आज जायगी-अभी जायगी!"

ऐसा कह कर शिशुपाल राजमहल से बाहर आया। सेनाएँ तैयार ही थीं। राजागण भी अपने--अपने रथों में सवार हो गये। शिशुपाल भी एक तेज घोड़ों के सुन्दर रथ पर सवार हुआ। साथ में शिशुपाल ने कुछ चतुर दासियाँ भी ले लीं कि जो प्रसंग आने पर दूतियों का काम कर सकें।

इस प्रकार ठाठ से मंगलवाद्यों की और जय--जयकार की ध्वनि के साथ ही साथ शिशुपाल की विशाल बरात रवाना हुई।
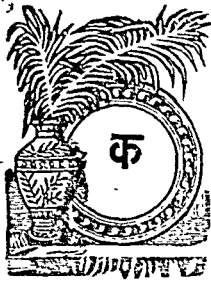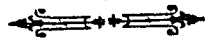
क ल्याण इसी में है कि मनुष्य बड़ों की सलाह लेकर ही किसी बड़े कार्य को प्रारम्भ करे; किन्तु दुराग्रही शिशुपाल ने बहुत--बहुत समझाने पर भी आखिर किसी की सलाह न मानी और बरात लेकर चन्देरी से रवाना हो गया। जिस दिन बरात रवाना हुई उसी दिन एक चतुर घुड़सवार को पहले ही कुन्दनपुर भेज दिया था, जिससे कि युवराज रुक्म को वह सूचित कर दे कि अमुक तिथि को बरात रवाना हो गई है, सो स्वागत आदि के लिए पूरी तरह से तैयार रहें।

घुड़सवार से सूचना मिलते ही उधर रुक्म कुमार प्रसन्न हुआ और उसने उबटन आदि के लिए रुक्मिणी के पास कुछ सखियों को भेजा।

सखियों ने रुक्मिणी के पास जाकर देखा कि वह उदासीन होकर बैठी है। उन्होंने सोचा कि रुक्मिणी को बरात रवाना होने की सूचना नहीं मिल पाई है--इसीलिए पहले उसे सूचित करके उसकी उदासीनता को मिटाना चाहिये। उन्हें विश्वास था कि बरात के आने की खबर सुन कर रुक्मिणी प्रसन्न हो जायगी।

अधिक निकट पहुंच कर सखियों ने कहा:—"बहिनजी! चन्देरी से बरात रवाना हो गई है। सच मानिये, हम मजाक नहीं

कर रही हैं। अभी थोड़ी-ही देर पहले एक घुड़सवार ने आकर ये समाचार सुनाये हैं और रुक्मकुमार ने हमें आपके पास ......"

"हाँ, हाँ, समझ गई। मेरे पास इसलिए भेजा है कि उठो, चिन्ता छोड़ो, उबटन लगवाओ और श्रृङ्गार कर लो-यह कह दें। यही बात है न ? लेकिन सखियो ! मैं साफ-साफ कह देती हूँ कि अभी श्रृङ्गार नहीं करना चाहती।" रुक्मिणी ने कहा। इस पर सखियों ने पूछा :—"श्रृङ्गार नहीं करना चाहतीं, तो क्या दीक्षा लेना चाहती हैं आप ?"

"नहीं-नहीं, अभी उतना वैराग्य नहीं आया है। विवाह तो करना ही है, किन्तु मैं श्रीकृष्ण को छोड़ कर और किसी से विवाह न करने की प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ। मेरी यह बात रुक्मकुमार से भी जाकर कह दो और माताजी से भी कह दो। जाओ ! मैं तो श्रृङ्गार तभी करूँगी, जब मेरे प्राणनाथ पधारेंगे।" रुक्मिणी का यह उत्तर सुन कर सखियाँ चुपचाप उलटे पैरों लौट आईं और उन्होंने रुक्मकुमार से तथा महारानी शिखावती से रुक्मिणी की प्रतिज्ञा की बात कह दी। महारानी ने सखियों से कहा:—"अभी रुक्मिणी की तबियत कुछ बिगड़ गई मालूम होती है, इसलिए तुम चली जाओ। मैं इलाज करने की कोशिश करूँगी।"

सखियों के चले जाने पर रुक्म माताजी के पास आया और बोला:—"माताजी ! अभी-अभी एक घुड़सवार ने आकर खबर दी है कि महाराज शिशुपाल बरात लेकर आ रहे हैं और इधर सखियों ने खबर दी है, कि बहिन जिद् पकड़ कर बैठी है-उबटन नहीं लगवाती-श्रृंगार नहीं करती। यदि मौके पर न मानेगी तो बड़ा अनर्थ होगा ! वह आपकी बेटी है, आपने उसे जन्म दिया है, इसलिए आप खुद जाकर यदि कुछ समझाने की कोशिश करें, तो मेरा विश्वास है कि वह तैयार हो जायगी।"

शिखावती:—"हाँ, बेटा ! मैं भी यही सोच रही हूँ कि यदि मौके पर वह नहीं मानेगी तो क्या होगा ? मैं अभी जाती हूं-सब काम छोड़कर पहले यही काम करती हूँ। यदि समझाने से मान जायगी तो खुशी होगी और हमारी भी चिन्ता टलेगी।"

यह कह कर महारानी शिखावती उठ कर रुक्मिणी के कमरे की तरफ रवाना हो गई और इधर रुक्मकुमार भी राजभवन में पहुँच कर स्वागत की तैयारी करने में लग गया।

रुक्मिणी ने माताजी को निकट आते हुए देखकर प्रणाम किया। आशीर्वाद देते हुए माता शिखावती ने कहा:—"सुखी रहो बिटिया ! अपने प्राणनाथ की सेवा के लिए तैयार हो जाओ। सारे गाँव में हर्ष का वातावरण छा रहा है। राजमहल में स्वागत की धूम धाम से तैयारियाँ हो रही हैं और ऐसे समय में तुम किसी जिद पर अड़ कर बैठी रहो तो यह अच्छा नहीं।"

रुक्मिणी:—"माताजी ! मेरे प्राणनाथ श्रीकृष्ण हैं। मन से मैं उन्हें स्वीकार कर चुकी हूँ इसलिए जब वे पधारेंगे, तभी मुझे प्रसन्नता होगी।"

शिखावती:— 'मैं जानती हूँ कि श्रीकृष्ण में काफी गुण हैं, किन्तु महाराज शिशुपाल के बराबर गुण उनमें नहीं हो सकते। तुमने श्रीकृष्ण के गुणों की प्रशंसा ही सुनी है-महाराज शिशुपाल के गुणों की नहीं; इसीलिए जैसे तुम श्रीकृष्ण के गुणों को सुनकर उनकी ओर आकृष्ट हो गई हो, वैसे ही यदि महाराज शिशुपाल के गुण सुन लोगी तो मैं समझती हूँ कि तुम्हारे विचार जरूर बदल जायँगे। ध्यान से सुनो ! महाराज शिशुपाल बड़े साहसी और पराक्रमी हैं। दूर दूर तक उनका यश छाया हुआ है। निन्यानवे राजाओं पर उनका अधिकार है। जरासंध जैसा वीर भी उनका

मित्र है। तुम्हारे सौभाग्य से ही उन्होंने तुम्हारे विवाह के लिए भेजा हुआ टीका स्वीकार किया है। तुम्हारा बड़ा भाई तुम्हें सुखी देखना चाहता है। महाराज शिशुपाल से उसकी घनिष्ट मित्रता है, इसीलिए उन्होंने स्वीकृति दे दी, अन्यथा ऐसा सुयोग मिलना मुश्किल था। वे बरात लेकर आ रहे हैं-उठो! तैयार हो जाओ।"

रुक्मिणी:—"लग्न तो एक ही बार होता है न माताजी?"

शिखावती:—"हाँ-हाँ, एक ही बार तो होता है। मैं कब तुम्हें दूसरी बार लग्न करने को कह रही हूँ?"

रुक्मिणी:—"और नहीं तो क्या? जब मैं एक बार श्री कृष्ण को स्वीकार कर चुकी हूँ, तब कैसे किसी दूसरे को स्वीकार करूँ! यों तो श्रीकृष्ण के गुणों के सामने शिशुपाल के गुण नगण्य हैं, किन्तु थोड़ी देर के लिए मानलिया जाय कि महाराज शिशुपाल में अधिक गुण हैं, फिर भी मेरे सामने उनकी प्रशंसा बेकार है। मैं आग में जल मरूँगी, किन्तु किसी अन्य व्यक्ति को पतिरूप में स्वीकार न करूँगी। इस विषय में कुछ कहने का अर्थ है-व्यभिचार के लिए मुझे प्रेरित करना।"

शिखावती ने उपालम्भ के स्वर में कहा:—"यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा थी तो पहले क्यों नहीं बोली? बरात आने वाली है और अब ऐसी जिद पकड़ कर बैठी हो। क्या यह हमारे साथ विश्वासघात नहीं?"

रुक्मिणी:—"बिल्कुल नहीं। विश्वासघात तो आपने किया है—पूज्य पिताजी के साथ! कि उनको उचित बात को बिना पूरी तरह समझे ही विरोध करने वाले भाई की हां में हां मिला दी। विश्वासघात किया है-भाई रुक्म ने, जिसने गुप्तरूप से

टीका भेज दिया। टीका भेजने से पहले यदि मुझ से पूछ लिया होता तो मैं जरूर अपने विचार प्रकट कर देती।"

शिखावती:—"माना कि भाई ने तुमसे पूछा नहीं, किन्तु वह तुम्हारी भलाई चाहता है। अपनी मित्रता के बल से सुन्दर कामदेव जैसा सुयोग्य वर ढूँढ देने के कारण उसने तुम्हारा उपकार ही किया है? अन्यथा कौए के समान काले श्रीकृष्ण के ही साथ तुम्हें जाना पड़ता! जिद्द छोड़ दे बेटी! तू गोरी है और वह काला दोनों की जोड़ ही नहीं जमती।"

रुक्मिणी:—"माताजी! विवाह का अर्थ है-आत्मसमर्पण। एक बार आत्मसमर्पण कर दिया, फिर विवाह का प्रश्न ही नहीं रहा। काले होते हुए भी श्रीकृष्ण मेरे लिए करोड़ों कामदेवों से भी अधिक सुन्दर हैं। कस्तूरी काली होती है, तो क्या इसीलिए उसका महत्त्व कम हो जाता है? आँख सफेद हैं और कीकी काली, तो क्या इसीलिए उनकी जोड़ नहीं जमती? मैं आप से प्रार्थना करती हूँ कि अब आप इस विषय में मुझे कुछ न कहें। मैं अपना प्रण नहीं तोड़ सकती!"

रुक्मिणी की दृढ़ता को देख कर माताजी ने वहाँ से उठ जाना ही ठीक समझा। अपने निवास-भवन में जाकर महारानी शिखावती इस विचार में डूब गई कि अब रुक्मिणी की जिद्द को दूर करने के लिए कौन-सा उपाय किया जाय?
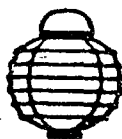
१५–नगरयात्रा
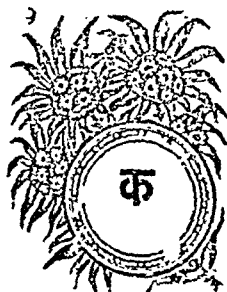
ल्प वृक्ष को छोड़कर जैसे कोई कर्णिकार को नहीं चाहता, ठीक वैसे ही श्रीकृष्ण को छोड़कर रुक्मिणी शिशुपाल को नहीं चाहती। महारानी शिखावती के द्वारा बहुत प्रयत्न किये जाने पर भी जब रुक्मिणी अपने निश्चय पर अटल रही तो महारानी ने उसे समझाने के लिए अपनी पुत्रवधू (रुक्म की पत्नी) को रुक्मिणी के पास भेजा।

बड़ी भौजाई को आते देखकर रुक्मिणी ने यथोचित सत्कार किया। फिर दोनों में इस प्रकार बातचीत होने लगी।

भौजाई:—"क्या कर रही हैं आप ?"

रुक्मिणी:—"विचार कर रही हूँ।"

भौजाई:—"किसका ?"

रुक्मिणी:—"भविष्य के जीवन का।"

भौजाई:—"अभी तो बाल काले हैं आपके। जब बाल सफेद हो जायँ, तब भविष्य के जीवन का विचार करना चाहिये। अभी से क्या ? अभी तो वर्त्तमान-जीवन का ही विचार करें।"

रुक्मिणी:—"अच्छा तो आप ही बताइये कि वर्त्तमान-जीवन का विचार कैसे किया जाता है ?"

भौजाई:—"हाँ, सुनिये। मैं यही तो सुनाने आई हूँ। जैसे मैं आपके बड़े भाई के साथ विवाह करके सानन्द दाम्पत्यजीवन बिता र ी हूं, उसी प्रकार आप भी चन्देरी के महाराज शिशुपाल के साथ ·······।"

रुक्मिणी:—"हाँ-हाँ, समझ गई कि आप क्या कहना चाहती हैं। मालूम होता है कि माताजी ने ही आपको मेरे पास भेजा है। मैं विवाह करने से कब इन्कार करती हूं, किन्तु जहाँ न्यायनीति का रक्षण न हो, जहाँ कन्या के अधिकारों को कुचला जाता हो, वहाँ मैं विवाह कर नहीं सकती। आप तो हैं ही किस खेत की मूली! साक्षात् इन्द्राणी भी आकर मुझे समझाये तो भी मैं अपना प्रण नहीं तोडूँगी; क्यों कि अपने प्रण की रक्षा में ही मेरे शीलधर्म की रक्षा है।"

यह सुन कर भौजाई (रुक्म की पत्नी) वहाँ से उठ कर सासूजी (महारानी शिखावती) के पास आई और सारी बातें कहीं। सुन कर महारानी शिखावती को बड़ी चिन्ता होने लगी कि अब क्या होगा?

रुक्मकुमार को आशा थी कि माताजी के समझाने पर रुक्मिणी मान जायगी, इसलिए उसने यह कार्य माताजी को सौंप दिया था। माताजी को अपने उस प्रयत्न में कहाँ तक सफलता मिली? यह जानने के लिए वह बड़ा उत्सुक था, इसलिए उसने माताजी के निकट पहुँच कर जब इस विषय में पूछताछ की तो उसे बड़ा बुरा लगा। गुस्सा भी आगया, किन्तु उसने गुस्से को रोक कर माताजी को समझाया:—"माताजी! आप चिन्ता न करें। बरात निकट आगई है, मैं जरा ठाठ से उसका स्वागत करूँगा। महाराज शिशुपाल की विशाल बरात को, समृद्धि को और सुन्दरता को देख कर रुक्मिणी के विचार जरूर बदल जायँगे।

इतने पर भी यदि उसने अपनी जिद न छोड़ी और उसके विचारों में परिवर्त्तन न हुआ, तो मैं जबर्दस्ती उसका हाथ शिशुपाल के हाथ में दे दूँगा।"

यह कह कर रुक्मकुमार राजमहल से बाहर आया और कुछ सैनिकों के साथ बरात की अगवानी करने के लिए कुन्दनपुर के बाहरी उद्यान पर पहुँचा। उद्यान में महाराज शिशुपाल पहले ही से आकर डेरा डाले बैठे थे। दोनों मित्र बड़े प्रेमपूर्वक आपस में मिले और एक-दूसरे की प्रशंसा करने लगे:—

रुक्मकुमार:—"आपको धन्य है, कि आपने टीका स्वीकार करके क्षात्र धर्म का रक्षण किया है।"

शिशुपाल:—"धन्यवाद के योग्य तो सचमुच आप हैं, कि सबका विरोध सहकर भी आपने क्षत्रियकुल की शान बचाई।"

रुक्मकुमार:—'मेरी प्रार्थना का रहस्य समझ कर आप लग्नतिथि से कुछ दिनों पहले पधारे-यह भी आपकी चतुराई का एक प्रमाण है।"

शिशुपाल:—"आपका निमन्त्रण पाया और मैं आगया, इसमें चतुराई क्या हुई ?"

रुक्मकुमार:—"चतुराई यह हुई कि पहले आकर आपने अपनी वस्तु पर अधिकार जमा लिया। यद्यपि पिताजी उस काले ग्वाले के साथ बहिन का विवाह करना चाहते थे, किन्तु बहिन के सौभाग्य से कहिये या मेरे प्रयत्न से कहिये, पिताजी तटस्थ हो गये हैं, इसलिए उस ग्वाले को वे बुला नहीं सकते! फिर भी हो सकता है कि उन्होंने गुप्तरूप से किसी तरह उस ग्वाले को आमन्त्रण भेज दिया हो और वह लग्नतिथि पर आ टपके। अब तक तो वह आया

नहीं है। पहले आने वाले का पहला अधिकार माना जाता है, इसलिए आपका बहिन पर अधिकार हो चुका है।"

शिशुपाल:—"यह अच्छा हुआ कि अब तक ग्वाला यहाँ आ नहीं पाया है, किन्तु यदि आ भी गया तो बच न सकेगा। देख रहे हैं न आप-मैं कितनी विशाल सेना लाया हूं? मेरी सेना के अतिरिक्त इन निन्यानवे राजाओं की भी ये अलग-अलग सेनाएँ खड़ी हैं और फिर आपकी भी तो कमजोर सेना कहाँ है? इस प्रकार कुल मिला कर हमारे पास एक सौ एक सेनाओं का विशाल समूह है। मेरा विश्वास है कि यदि देवराज इन्द्र भी प्रतिपक्ष में खड़ा हो जाय तो इतनी विशाल सेना को देख कर भाग जायगा! फिर उस ग्वाला के छोकरे की क्या बिसात?"

इसके बाद रुक्म ने जरा अधिक निकट पहुँच कर धीरे-से कहा:—"आपने जो कुछ कहा सो ठीक ही है; किन्तु एक बात अधूरी रह गई है। बहिन ने अब तक उबटन नहीं लगवाया है, उसे आपके विषय में किसी ने बहका दिया मालूम होता है; किन्तु भ्रम आखिर भ्रम है। वह टिकेगा कब तक? आपकी सुविशाल सेनाओं का समूह, ऋद्धिसमृद्धि और सुन्दरता को देख कर उसका भ्रम दूर हो जायगा। इसलिए खूब सजावट के साथ नगर-यात्रा की तैयारी करनी चाहिये।"

यह सुनते ही शिशुपाल के मन में घबराहट हुई। यों तो नारदजी के मुँह से वह रुक्मिणी की प्रतिज्ञा के विषय में सुन चुका था और तब से उसके मन में कुछ खटका भी बैठ गया था, किन्तु वही बात अपने मित्र के मुँह से सुन कर उसका पुराना घाव हरा होगया!

द्रौपदी का स्वयंवर था अनेक राजकुमारों के अतिरिक्त एक ओर से अर्जुन आदि पाँचों पाण्डव आये थे तो दूसरी ओर से कर्ण

के साथ दुर्योधन भी आया था। उस समय अर्जुन और कर्ण-ये दोनों धनुर्विद्या में अत्यन्त कुशल थे। स्वयंवर में राधावेध की शर्त्त थी, जिसमें अर्जुन और कर्ण-ये दोनों समर्थ थे। परन्तु कथाकार का कहना है कि किसी तरह कर्ण को जब यह मालूम होगया कि द्रौपदी मुझे नहीं चाहती, अर्जुन को चाहती है, तब सामर्थ्य होते हुए भी और दुर्योधन के द्वारा अत्यन्त आग्रह करने पर भी कर्ण ने राधावेध का प्रयत्न नहीं किया। इससे कर्ण का सन्मान घटा नहीं, बल्कि बढ़ गया था। इसी प्रकार यहाँ शिशुपाल को भी जब मालूम होगया है, कि रुक्मिणी उसे नहीं चाहती तो उसे नगर-प्रवेश का विचार छोड़ कर वहाँ के बगीचे से ही लौट कर चन्देरी चलो जाना चाहिये था! इससे कर्ण की ही तरह उसकी प्रतिष्ठा कायम रह जाती किन्तु शिशुपाल को यह नहीं सूझा। वासना, सौन्दर्य-पिपासा और विशाल सैन्य के अभिमान ने उसका विवेक नष्ट कर दिया था।

रुक्म का आश्वासन सुन कर शिशुपाल की घबराहट कम हुई और उसने तुरन्त सजावट के साथ अपनी ऋद्धि-समृद्धि का प्रदर्शन करने के लिए नगरयात्रा निकाली। कुन्दनपुर के बीच बाजार से होकर निकले वाली इस अद्भुत नगरयात्रा को देख कर सारी जनता आश्चर्यचकित होगई।

धीरे-धीरे नगरयात्रा राजमहल के निकट आई। शिखावती उसे देख कर बहुत प्रसन्न हुई। सखियों से उसने कहा:—"धन्य है रुक्मकुमार को! जिसके प्रयत्न से मेरी बेटी के लिए इतना समृद्धि-शाली वर प्राप्त हुआ। यदि रुक्मकुमार न होता, तो ग्वालों की बरात आई होती। जाओ-जाओ सखियो! रुक्मिणी को बुला लाओ, जिससे कि वह वरयात्रा देख कर अपनी आँखें सफल करे।"

आदेश पाकर सखियाँ रुक्मिणी के पास पहुँचीं और बोलीः—"बहिनजी ! चलो; महाराज शिशुपाल की बरात महलों के निकट आ गयी है-देखलो। चन्द्र को देखकर कुमुदिनी कभी कुम्हलाती है क्या ?"

रुक्मिणीः—"सखियो ! चन्द्रोदय होने पर कुमुदिनी खुद ही खिल उठती है। खिलने के लिए उस समय उसे उपदेश नहीं देना पड़ता। यदि मैं कुमुदिनी हूं तो श्रीकृष्णचन्द्र के उदय होने पर खुद ही खिल उठूँगी। तुम चली जाओ ! मैं शिशुपाल को देखना भी पाप समझती हूँ।"

सखियों ने लौट कर महारानी से कहा, तो वह स्वयं उसे समझाने के लिए दौड़ी-दौड़ी रुक्मिणी के पास आई और बोलीः-"चलो बेटी ! इतनी जिद्द अच्छी नहीं। एक बार चलकर महाराज शिशुपाल की ऋद्धि-समृद्धि-सम्पन्न बरात को देख तो लो, फिर भले ही विवाह तुम किसी से भी करो। मेरा आग्रह सिर्फ इतना ही है कि तुम अपनी आँखों से एक बार देख लो।"

रुक्मिणीः—"माताजी ! हंसिनी हंस को ही प्रेमपूर्वक देख सकती है, कौए को नहीं। श्रीकृष्ण भले ही काले हों, फटे वस्त्र पहने हुए हों और पैदल भी चल कर आये हों तो भी मैं उन्ही को प्राणनाथ बनाऊँगी। गंगाजल छोड़कर मैं गटर का पानी पीना तो दूर देखना भी उचित नहीं समझती !"

यह सुनकर माता को घोर निराशा हुई। उधर रुक्म ने बरात को सजे हुए एक नये महल में उतार दिया। फिर नगर-यात्रा देख कर रुक्मिणी के विचारों में परिवर्त्तन हुआ या नहीं ? यह जानने के लिए वह माता के निकट आया, किन्तु दूर से ही माता के उदास चेहरे को देख कर उसने जान लिया कि नगर-यात्रा का प्रदर्शन असफल रहा है !

१६–चिट्ठी भेजो !
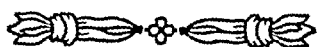
न्या अब तो जरूर मेरी ओर आकृष्ट हो गई होगी !-ऐसा शिशुपाल मन ही मन सोच रहा था–अपने निवासभवन में बैठा हुआ शिशुपाल बार–बार द्वार की ओर आशा–भरी नजरों से देख रहा था कि कब रुक्मकुमार आयें और मुझे खुशी के समाचार सुनायें कि 'मेरी बहिन राजी हो गई है !'

उधर माताजी से निराशा के समाचार सुन कर यह सोचता हुआ कि अब मैं अपने मित्र को कैसे मुँह बताऊँगा !–मन में सकुचाता हुआ भी धीरे--धीरे कदम बढ़ाता हुआ रुक्मकुमार शिशु-पाल के डेरे पर आ गया।

उसे देखते ही शिशुपाल ने पूछा:—"कहिये मित्रवर ! नगर--यात्रा सफल रही या नहीं ?"

रुक्म:—"इसमें तो कोई शक नहीं कि नगरयात्रा बड़ी शानदार रही। सारी जनता रुक्मिणी के भाग्य की सराहना करने लगी है। परन्तु............"

शिशुपाल:—"क्यों ? 'परन्तु' कह कर रुक क्यो गये ? पूरी बात कह दीजिये न !"

रुक्म:—"परन्तु ऐसा मालूम होता है कि बहिन को किसी ने बहुत बहका दिया है। मेरा खयाल है कि यह काम नारद का होना चाहिये !"

शिशुपाल:—"अच्छा ? नारद यहां भी आया था क्या ? वह बड़ा धूर्त्त है। वह चन्देरी में भी आया था और मुझे उस ग्वाले का भय बता कर कहने लगा था कि आप कुन्दनपुर मत जाइये ! परन्तु मैं कहां उसकी बातों में फँसने वाला था ? आखिर चला ही आया। उसे क्या मालूम कि श्रीकृष्ण इतना शूरवीर सिद्ध होगा कि मेरी सुविशाल सेना के कुन्दनपुर में आने की खबर सुनते ही इधर आने का साहस तक न करेगा ! उसे क्या मालूम कि क्षत्रियों में क्षत्रिय का खून होता है और ग्वालों में ग्वाले का ? हो सकता है कि नारद श्रीकृष्ण के पास भी गया हो और उसे कुछ और ढंग से समझाया हो ! मेरी समझ में तो यह आता है कि कुन्दनपुर में मेरे आगमन की बात जरूर उनके कानों में पहुँच गई होगी और द्वारका में बैठे बठे नारद तथा श्रीकृष्ण दोनों थर-थर काँप रहे होंगे !"

रुक्म:—"जरूर काँप रहे होंगे ! आपका प्रताप सचमुच सराहनीय है।"

शिशुपाल:—"यह तो ठीक है, किन्तु सोचना यह है कि हमें सफलता कैसे मिले। यद्यपि अब तक वह ग्वाला आया नहीं है, फिर भी कह नहीं सकते, वह कब चुपके से रुक्मिणी को उठा ले जाय-बड़ा धूर्त्त और चोर है वह। इसलिए हमें पूरी सावधानी रखनी चाहिए।"

रुक्म:—जी हाँ, जरूर रखनी चाहिये। माघकृष्णा अष्टमी की लग्नतिथि अटल है, उस दिन तक यदि हम सावधान रहें और

मुझे अपने शीलधर्म की रक्षा के लिए प्राणों का त्याग ही करना पड़ेगा। आशा है, आप मेरे हृदय के भाव समझ कर लग्नतिथि तक अवश्य पधारेंगे। मेरे लिए केवल आप ही आधार हैं।"

इस प्रकार चिट्ठी लिख कर नीचे हस्ताक्षर कर दिये। इतने में कुशल नामक एक वृद्ध राजपुरोहित आया और उसने राजकन्या को नमस्कार किया। रुक्मिणी ने भी पुरोहितजी को प्रणाम किया और बदले में आशीर्वाद पाया:—"अखण्ड सौभाग्यवती बनो! प्रसन्न रहो।"

इस पर रुक्मिणी ने कहा:—"पुरोहितजी! मेरी इस समय जो परिस्थिति है, उसे देखते हुए न तो सौभाग्य का ठिकाना है और न प्रसन्नता का ही! न कहीं से कुछ आशा की किरण ही दिखाई दे रही है। मेरी चिन्ता का कारण आप से छिपा नहीं है। अब आप ही कोई रास्ता बताइये?"

पुरोहित:—"सत्य और शील जिस पक्ष में हैं, वहाँ रास्तों की कमी नहीं होती। हम तो सिर्फ उस रास्ते पर चलने वाले हैं। आपकी चिन्ता के कारण को समझ कर ही मैं आपके पास आया हूं। यदि मैं किसी तरह आपकी सहायता कर सकूँ और आपका संकट मिटा सका तो अपना जीवन सार्थक समझूँगा। मेरे लायक कोई कार्य हो तो फरमाइये!"

रुक्मिणी:—"कार्य तो एक चिट्ठी को द्वारकाधीश के पास पहुंचाने का है, किन्तु है बड़ा कठिन। चारों ओर नंगी तलवारों का कड़ा पहरा है। भेद खुलने पर प्राणसंकट का भय है। मेरे कारण एक वृद्ध ब्राह्मण के प्राणों पर संकट छा जाये-ऐसा मैं नहीं चाहती।"

पुरोहित:—"लेकिन मैं चाहता हूँ। हमारे शास्त्रों में कहा है:—

परोपकारः कर्त्तव्यः, प्राणैरपि धनैरपि।
परोपकारजं पुण्यं, न स्यात्क्रतुशतैरपि॥ २० ॥

अर्थात् प्राण और धन की पर्वाह न करके परोपकार करना चाहिये; क्योंकि परोपकार से जितना पुण्य होता है, उतना सैंकड़ों यज्ञों से भी नहीं होता! और भी कहा है:—

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः, परोपकाराय वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय दुहन्ति गावः, परोपकारार्थमिदं शरीरम् ॥२१॥

वृक्ष परोपकार के ही लिए फलते हैं, नदियाँ परोपकार के ही लिए बहती हैं, गौएँ परोपकार के ही लिए दूध देती हैं-(इससे सिद्ध होता है कि) यह शरीर परोपकार के ही लिए है। शरीर की शोभा ही परोपकार से है:—

"विभाति कायः खलु सज्जनानाम्
परोपकारेण न चन्दनेन॥"

सज्जनों का शरीर परोपकार से ही सुशोभित होता है, चन्दन से नहीं। यह तो मेरा सौभाग्य है कि मुझे परोपकार का अवसर मिल रहा है, यदि मैं आपके काम आ सका तो अपने जीवन को सफल समझूँगा। यदि कार्य में असफल रहा और मेरे प्राणों पर संकट आगया तो भी मुझे इस बात का सन्तोष रहेगा कि सत्य की सेवा या परोपकार के प्रयत्न में मेरे प्राण न्यौछावर हुए हैं।"

भूआजी ने भी कहा कि "इन्हें चिट्ठी दे दो। शायद कार्य सफल हो जाय! चिट्ठी लिखने के बाद ही इधर उसे ले जाने के लिए पुरोहितजी का भी पदार्पण हो गया! यह भी कार्य सफलता का गुप्त संकेत मालूम होता है।"

चिट्ठी दे दी गई। पुरोहितजी उसे उठा कर रवाना होगये।

१७—असफल प्रलोभन
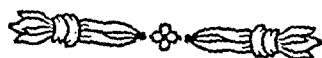
कड़े प्रहरियों के बीच से भी कुशल नामक पुरोहित सकुशल पार हो गया। यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। पहले भी ऐसी अनेक घटनाएँ हो चुकी हैं। श्रीकृष्ण के पिता वसुदेवजी भी श्रीकृष्ण को साथ लेकर कड़े पहरे से पार होकर नन्दगोप के यहाँ चले गये थे। गुजरात के बादशाह ने एक बार मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ पर आक्रमण किया था और गढ़ को चारों ओर से अपनी सेना के द्वारा घेर लिया था। उस समय चित्तौड़ गढ़ की बड़ी ख्याति थी। कहा है:—

> गढ़ तो चित्तौड़ गढ़ और सब गढैया हैं।
> ताल तो भूपाल ताल और सब तलैया हैं॥

सुन्दर वस्तु पर कौन नहीं ललचाता? वहाँ की महारानी ने जब देखा कि चारों ओर से शत्रुओं के सैन्य ने किला घेर लिया है। युद्ध अनिवार्य हो गया है। अपनी सेना उतनी विशाल नहीं है कि शत्रुओं को परास्त कर सके। बाहर से मित्र राजाओं को सहायता के लिए बुलाने की कोशिश करने का भी अवसर नहीं है। तब अन्त में उसने बादशाह हुमायूं के पास राखी भेजी। राखी लेकर एक साहसी राजपूत उस कड़े पहरे को भी सकुशल पार कर गया और बादशाह हुमायूं को राखी भेंट की। राखी का आशय समझ कर अपनी सेना के साथ हुमायूँ वहाँ आया और

गुजरात के बादशाह को परास्त करके अपनी क्षत्राणी बहिन की रक्षा की थी ! यह सब कहने का आशय यही है, कि सत्य में कितनी शक्ति है ? यह समझ लिया जाय तो फिर कुशल पुरोहित के द्वारा सकुशल द्वारका जा पहुँचने की बात में कोई आश्चर्य मालूम न होगा। कहा हैः—

> अश्वमेधसहस्त्रं च, सत्यं च तुलया धृतम् ।
> अश्वमेधसहस्राद्धि, सत्यमेवातिरिच्यते ॥२२॥

सत्य की ही विजय होती है, झूठ की नहीं ? परन्तु शिशुपाल यह बात भूल गया है। रुक्मिणी उसे नहीं चाहती, फिर भी उसे पाने का प्रयत्न कर रहा है, जो सरासर अन्याय है। शिशुपाल राजा है समझता है, राजनीति से अन्याय अथवा असत्य की भी विजय हो सकती है। इसलिए वह वैसा ही प्रयत्न करने में लगा है। साम, दाम, दण्ड और भेद का प्रयोग करके वह रुक्मिणी को वश में करना चाहता है। साम (शान्ति या मित्रता) और भेद (फूट डालने) का प्रयोग तो असफल हो चुका था; इसलिए दाम और दण्ड का प्रयोग करना वह आवश्यक समझ रहा था। इसके लिए उसने अपनी दासियों को बुला कर कहाः-"दासियो ! तुम बड़ी बुद्धिमती हो, चतुर हो। तुम चाहो, तो दिन को रात और रात को सूर्य बता सकती हो। आकाश के तारे भी तोड़ कर ला सकती हो। पानी में आग लगा कर फिर उस आग में भी बाग लगा सकती हो। मैं तुम्हें इतना बड़ा तो नहीं, किन्तु एक छोटा-सा काम सौंपना चाहता हूँ और वह यही कि यहाँ की राजकन्या रुक्मिणी को मेरे आधीन कर दो। मेरी ऐसी प्रशंसा करो कि वह प्रसन्न होकर मुझे पतिरूप में स्वीकार कर ले।"

सज्जनो ! पाप की दलाली से पुण्य की दलाली अच्छी। सोने की दलाली छोड़ कर कोयले की दलाली में हाथ काले करना भी क्या कोई समझदारी है ? सत्य की नहीं, असत्य की-धर्म की नहीं, अधर्म की-न्याय की नहीं, अन्याय की दलाली करने के लिए यहाँ दासियाँ तैयार हो गईं और उनमें से किसी एकने कहाः— "राजन् ! रुक्मिणी तो है ही किस बाग की चिड़िया ? यदि हम प्रयत्न करें तो इन्द्राणी को भी आपके आधीन कर सकती हैं ! हम तो सिर्फ आपके आदेश की ही प्रतीक्षा में थीं, अन्यथा कभी से रुक्मिणी को आपके कदमों में ला झुकातीं।"

इस पर शिशुपाल ने कहाः—"हां हां, मुझे पूरा विश्वास है कि तुम यह कार्य सहज ही कर सकोगी। याद रक्खो, यदि तुम्हें अपने कार्य में सफलता मिल गई, तो मुँह माँगा इनाम पाओगी !"

दासियाँ बोलीं:—"इस विषय में आप बिल्कुल निश्चिन्त रहें।"

इसके बाद बहुमूल्य शृङ्गार-सामग्री साथ लेकर दासियाँ दूतियों का काम करने के लिए रथ पर सवार हुईं और राजमहल की तरफ रवाना हुईं।

राजमहल के निकट पहुँच कर दूतियाँ रथ से नीचे उतरीं और अन्तःपुर में जहाँ राजकन्या रुक्मिणी थी, वहाँ पहुँच गईं।

सामने से अपरिचित बहिनों को आती हुईं देख कर रुक्मिणी ने उनका स्वागत किया और बैठने के लिए कहा। दूतियों ने बहुमूल्य वस्त्रालंकारों से सुसज्जित स्वर्णथाल राजकन्या के चरणों में रख दिये और फिर मुस्कुराती हुई आपस में इस प्रकार बातचीत करने लगीः—

पहली दूती:—"राजकन्या रुक्मिणीजी के दर्शनों का मौका आज मिला है। यह हमारा कितना बड़ा सौभाग्य है?"

दूसरी दूती:—"बहुत बड़ा! जैसी प्रशंसा सुनी थी सच-मुच वैसी ही हैं।"

तीसरी दूती:—"जोड़ा भी कितना सुन्दर मिला है। यदि राजकन्या इन्द्राणी हैं, तो महाराज इन्द्र।

चौथी दूती:—"दोनों एक दूसरे के बिना अधूरे हैं। इन्द्र की शोभा इन्द्राणी से है और इन्द्राणी की शोभा इन्द्र से।"

पाँचवीं दूती:—"मुझे तो इस बात का विचार आ रहा है कि सादे वेश में भी जब राजकुमारी जी का सौन्दर्य इन्द्राणी को लज्जित कर रहा है, तब शृंगार धारण कर लेने पर इनका सौन्दर्य कितना अद्भुत और अनुपम हो जायगा!"

छट्ठी दूती:—"अरी! बातों ही बातों में खास बात तो भूल ही गई। महाराज ने हमें यहाँ जिस काम के लिए भेजा है, वह कब करना है?"

यह सुन कर पहली दूती ने नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर रुक्मिणी से कहा:—"रुक्मिणी जी! चन्देरी के महाराज ने यह शृंगार-सामग्री आपके लिए भेंट भिजवाई है, सो इसे स्वीकार कीजिये।" दूतियों की बातचीत सुन कर रुक्मिणी समझ गई कि अन्यायी शिशुपाल की ये दूतियाँ मुझे फुसलाने आई हैं। पैसों की लालच में आकर जो नारियाँ किसी बहिन को शील-भ्रष्ट करने का प्रयत्न करती हैं, वे नारीपन को कलंकित करने वाली हैं। ऐसी नारियों से बातचीत करने की अपेक्षा मौन रहना ही अच्छा है। यह सोच कर रुक्मिणी चुप रही।

चुप देख कर दूतियाँ फिर आपस में यों बोलने लगीं:—

पहली दूती:—"मौनं सम्मतिलक्षणम्—मौन तो स्वीकृति का ही लक्षण है, इसलिए समझ लेना चाहिये कि महाराज की भेंट स्वीकृत हो चुकी है।

दूसरी दूती:—"नहीं, ऐसा समझना भूल है। भेंट मिलने पर जो प्रसन्नता होनी चाहिये, वह प्रसन्नता राजकुमारीजी के चेहरे पर कहाँ है ?"

तीसरी दूती:—"मुझे तो ऐसी आशंका होती है कि भेंट स्वीकार करने की इच्छा होते हुए भी राजकुमारीजी के चेहरे पर लज्जा और संकोच के कारण प्रसन्नता प्रकट नहीं हो पाई है।"

चौथी दूती:—"मेरी समझ में तो राजकुमारीजी यह सोच रही होंगी कि मुझे पट्टरानी पद मिलेगा या नहीं ?"

पाँचवीं दूती:—"अजी ! पट्टरानीपद भी मिल जाय तो क्या ? जब तक पतिदेव अपनी आज्ञा में न रहें, पद बेकार है। इसलिए राजकुमारीजी के मन में यही चिन्ता सवार होनी चाहिये कि पतिदेव मेरे अनुकूल रहेंगे या नहीं '

छट्ठी दूती:— "किन्तु तुम जो-जो विकल्प कर रही हो, वे सारे बेकार हैं। स्त्रियों को लज्जा और संकोच होता तो है, किन्तु सिर्फ पुरुषों के सामने ही। यहां तो कोई पुरुष नहीं है, सब स्त्रियाँ हैं। पट्टरानी-पद की आशंका भी नहीं रखनी चाहिये। मुझे विश्वास है कि हमारे महाराज इन्हें जरूर पट्टरानी बनायेंगे। अब रही आज्ञा पालन की बात, सो इसके लिए भी महाराज तैयार हैं। यदि राज-कुमारी जी चाहें तो हम महाराज से यह लिखवाकर सेवा में हाजिर कर सकती हैं कि ' मैं राजकन्या रुक्मिणी को पट्टरानीपद पर प्रतिष्ठित करके जीवन-भर आज्ञा का पालन करता रहूँगा।"

यह बात-चीत सुनकर रुक्मिणी को गुस्सा आ गया। बोली:—"दूतियो! वस्त्राभूषणों के या पट्टरानी पद के प्रलोभन में आकर मैं अपना धर्म नहीं ठुकरा सकती। मुझे अपने शील की पर्वाह है, श्रृंगार की नहीं। तुम जाओ और अपने महाराज से कह देना कि वे रुक्मिणी को पाने की आशा छोड़ कर चुपचाप लौट जायँ। पत्नी की आज्ञा में रहने वाले पति बनने योग्य नहीं होते!"

दूतियाँ:—"तुम हमारे महाराज का अपमान कर रही हो। तुम उन्हें चाहती हो या नहीं? इसका विचार किये बिना ही वे तुम्हारा पाणिग्रहण करेंगे। वे घसीट कर ले जायँ, इसकी अपेक्षा राजीखुशी उनके साथ हो जाने में ही तुम्हारा सन्मान रहेगा।"

यह बात रुक्मिणी को अत्यन्त असह्य मालूम हुई; इसलिए अपनी दासियों को आदेश देकर दूतियों को पिटवाकर उन्हें राजमहल से निकलवा दिया।

१८-रुक्म और चारों भाई

कराहती हुई-आँसू बहाती हुई दासियाँ महाराज शिशुपाल के निकट पहुँची और अपमान का बदला लेने की दृष्टि से बात में नमक मिर्च लगाकर यों कहने लगीः—"महाराज! वह बड़ी असभ्य लड़की है। उसने हमारी बातें तो सुनी ही नहीं आप के द्वारा भेजी हुई भेंट तो स्वीकार की ही नहीं, उल्टी अपनी दासियों के द्वारा हमें पिटवा कर निकलवा दिया! विशाल नगरयात्रा और आपकी प्रचण्ड सेना देखकर भी वह बिल्कुल प्रभावित न हुई। ऐसी मूर्ख लड़की के पीछे पड़ने से कोई लाभ नहीं, जो आपको एकदम तुच्छ समझती हो! उसने आपके लिए काफी हल्के शब्दों का प्रयोग किया है।

यह सुनकर शिशुपाल एकदम क्रुद्ध हो गया और उसने तुरन्त कुछ सैनिकों को बुलाकर कहा:—"तुम अभी राजमहल में जाकर उस अविनीत राजकन्या को पकड़ लाओ मेरे पास और सुनो, यदि कोई तुम्हारे इस कार्य में बाधक बने तो उसे उसी समय तलवार के घाट उतार दो।"

एक सैनिक ने हाथ जोड़ कर कहा:—"राजन्! जरा-सा विचार तो कीजिये कि इसका परिणाम क्या होगा?"

शिशुपालः—"चुप रहो ! परिणाम से हम निपट लेंगे, तुम्हें तो केवल आज्ञा का पालन करना चाहिये।"

इधर यह बात-चीत चल ही रही थी कि उधर से रुक्म-कुमार आ पहुँचा। शिशुपाल को क्रुद्ध देख कर कारण पूछने पर उत्तर मिलाः—"तुम्हारी बहिन ने दासियों का अपमान किया है। मेरी दासियों का अपमान मेरा अपमान है, जिसे मैं सहन नहीं कर सकता!"

शिशुपाल की यह बात सुन कर रुक्म ने कहाः—मैं जानता हूँ कि वीर अपना अपमान सह नहीं सकते! किन्तु औरतों की बातों में आकर उत्तेजित हो जाना भी कोई समझदारी नहीं है। मेरी बहिन के स्वभाव स मैं परिचित हूँ। दासियों ने उसे छेड़ा होगा, तभी बहिन ने उन्हें अपमानित किया होगा। मैंने सुन लिया है कि आपने सैनिकों को अभी क्या आदेश दिया है? यदि उस आदेश के अनुसार ही कार्य हुआ तो परिणाम-स्वरूप आपसे मुझे युद्ध करना पड़ेगा। जब अपनी दासियों का अपमान भी आपको सहन नहीं हो सका, तो मुझे अपनी बहिन का अपमान कैसे सहन होगा? मित्रवर! शायद आप यह भूल गये हैं कि आप यहाँ दूल्हा बन कर पधारे हैं और यह भी कि मैं आपको रुक्मिणी से पाणिग्रहण करवाने का वचन दे चुका हूँ। कल ही लग्नतिथि है और इस मंगल प्रसंग पर आपस में ही युद्ध छिड़ गया तो जनता में आपकी भारी हँसी होगी। वैसी अवस्था में मैं अपने वचन का भी पालन नहीं कर सकूंगा। इसलिए मेरी सलाह यह है कि आप शान्त रहिये। आज मैं खुद बहिन को समझाने की कोशिश करूँगा और शाम तक उसे पाणिग्रहण के लिए तैयार कर दूंगा। यदि इतने पर भी वह नहीं मानेगी, तो मैं जबर्दस्ती

उसके साथ आप का विवाह कर दूंगा। आपको इस समय शान्त और निश्चिन्त रहना चाहिये।"

उफनते हुए दूध में पानी के छींटे पड़ने से जैसे वह शान्त हो जाता है, वैसे ही रुक्मकुमार की बातों से शिशुपाल शान्त हो गया और उसने सैनिकों को दिया हुआ आदेश वापिस ले लिया (अर्थात्—रुक्मिणी के पास जाने वाले सैनिकों को रोक लिया।) रुक्मकुमार वहाँ से रवाना हो कर सीधा रुक्मिणी के पास पहुँचा। रास्ते में सोचा कि मारने-पीटने से तो वह अधिक हठीली बनेगी, इसलिए समझाना ही ठीक है। फिर निकट पहुंच कर प्रेम से मीठे शब्दों में बोलाः—प्यारी बहिन! शृंगार धारण कर लो। किसी के बहकाने में न आओ। मैंने तुम्हारे सुख के लिए पूज्य पिताजी का भी विरोध किया है। बरात भी आ चुकी है; अब तैयार हो जाओ। अधिक हठ का परिणाम अच्छा नहीं निकलता। मैं तुम्हें दहेज में आधा राज्य दे दूंगा। उठो, अब देरी न करो।"

रुक्मिणी:—"न्याय की बात तो यह है कि कन्या का विवाह उसी के साथ किया जाय, जिसे वह चाहती हो। कन्या को वर चुनने का पूरा अधिकार है। स्वयंवर की प्रथा इस बात का प्रमाण है। आपने मेरे इस अधिकार का अपहरण किया है; इतना ही नहीं, अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए आपने अपने पूज्य पिताजी की बात का भी विरोध किया है! बरात आ चुकी है, तो मै क्या करूँ? मैं जब इस दूल्हे को पसंद नही करती तो फिर कैसे आपकी बात मान लूँ? मुझे आधे राज्य का प्रलोभन मत दीजिये। समृद्धि की अपेक्षा मैं शील को अधिक महत्वपूर्ण समझती हूँ।"

रुक्म:—"महाराज शिशुपाल के साथ शादी करने में मेरा क्या स्वार्थ है?"

रुक्मिणी:—"यही कि इससे मित्रता दृढ़ हो जाय और अपना राज्य अधिक से अधिक सुरक्षित रह सके।"

रुक्म:—"लेकिन मैं क्या तुम्हारा बुरा चाहता हूँ? तुम्हारी भलाई के ही लिए मैंने शिशुपाल जैसे एक सुयोग्य वर को चुना है।"

रुक्मिणी:—"मेरी भलाई की अपेक्षा आपके स्वार्थ की ही मुख्यता थी। यदि मेरी भलाइ मुख्य होती, तो टीका भेजने से पहले आप मेरी इच्छा अवश्य जान लेते।"

रुक्म:—"तुम मेरी छोटी बहन हो। तुमने पहले कभी मेरी बात का विरोध नहीं किया-समझ में नहीं आता कि आज तुम्हें हो क्या गया है?"

रुक्मिणी:—"आपने भी पहले कभी पूज्य पिताजी की बात का विरोध नहीं किया-इसलिए मुझे भी समझ में नहीं आ रहा है कि उस दिन आपका विनय चला कहाँ गया था?"

रुक्म:—"पिताजी चाहते थे कि श्रीकृष्ण से तुम्हारी शादी हो, जिसके न खानदान का कोई ठिकानाहै; न रूपरंग का, न प्रतिष्ठा का। इसलिए मुझे उनका प्रस्ताव अयोग्य मालूम हुआ। अनुचित बात का विरोध करने से विनयभंग नहीं होता।"

रुक्मिणी:—"श्रीकृष्ण के गुणों से आप बिल्कुल अपरिचित हैं। इसलिए आप उनका महत्त्व नहीं जानते। दूसरी बात यह है कि मैं श्रीकृष्ण को पति बनाने की प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ। आपकी बात मान लेने का अर्थ है, अपनी प्रतिज्ञा तोड़ना! जो सर्वथा अनुचित है-इसीलिए मैं विरोध कर रही हूँ। आपके ही कथनानुसार अनुचित बात का विरोध करने में मेरा विनय-भंग नहीं होता, तब आप नाराज क्यों होते हैं?"

यह सुन कर रुक्म को गुस्सा आ गया। बोला—"तुम सीधी तरह से तैयार हो जाओ, इसी में तुम्हारा भला है। कल ही लग्नतिथि है, यदि न मानोगी, तो मैं जबर्दस्ती तुम्हारा हाथ महाराज शिशुपाल के हाथों में दे दूँगा। सब लोग मेरे पक्ष में हैं, इसलिए रोने-चिल्लाने पर भी तुम्हारा साथ कोई न देगा!"

रुक्मिणी:—"सत्य और न्याय तो मेरे पक्ष में है ही! इसलिए मैं इस बात की पर्वाह नहीं करती कि कोई मेरा साथ देगा या नहीं। यदि आपने किसी प्रकार की जबर्दस्ती की, तो कल मैं जीवित न मिलूँगी। मेरा यह बलिदान आप जैसे अत्याचारी भाइयों की आँखें खोलता रहेगा और चिरकाल तक कन्या के अधिकारों का रक्षण करता रहेगा।"

यह सुन कर रुक्म किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया-निरुत्तर हो गया और बड़बड़ाहट करता हुआ वहाँ से रवाना हो गया।

उधर बड़े भाई के साथ रुक्मिणी बहिन की इस गरमागरम बातचीत के शब्द चारों छोटे भाइयों के कानों में भी पड़े। इसलिए आपस में विचार करने लगे कि बड़े भाई जो कुछ कर रहे हैं, वह ठीक नहीं है पिताजी का अधिकार बड़ा है, उनकी बात अस्वीकार करके बड़े भाई ने उनका अपमान किया है। बहिन भी इस जबर्दस्ती के विवाह से परेशान है, हमें चाहिये कि उसे अपनी ओर से सान्त्वना दें।

फिर रुक्मिणी के पास पहुँच कर बोले:—"बहिन! धन्य है तुम्हारी दृढ़ता को, तुमने न्याय का रक्षण करने के लिए काफी साहस का परिचय दिया है। हम हृदय से यह चाहते हैं कि तुम्हें सुख हो और तुम पर कोई संकट न आये। अभी जाकर हम बड़े भाई साहब को समझा देते हैं। तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो।"

यह कह कर रुक्मिणी के उत्तर को सुने बिना ही चारों भाई वहाँ से चल दिये और जहाँ बड़े भाई थे, वहाँ आकर कहने लगेः–"भाई साहब आप कर क्या रहे हैं ?"

"वही, जो करना चाहिये।"

"किन्तु रुक्मिणी बहिन की इच्छा के बिना शिशुपाल से शादी करना भी योग्य है क्या ?"

"तो क्या बड़े भाई की इच्छा के बिना श्रीकृष्ण से शादी कर लेना योग्य है ?"

"बिल्कुल योग्य है। शादी बहिन को करना है, आपको नहीं। जिसे जो भी जीवनसाथी पसंद हो, उसी के साथ उसकी शादी करनी चाहिये।"

"वही तो कर रहा हूं। शिशुपाल को रुक्मिणी पसन्द है, इसलिए उसी के साथ तो शादी करने की मेरी कोशिश चल रही है।"

"आप यहीं भूल रहे हैं–भाई साहब ! पुरुष दूसरी शादी भी कर सकता है, किन्तु कन्या नहीं कर सकती–इसलिए विवाह में मुख्यरूप से कन्या की इच्छा का विचार करना चाहिये।"

"तुम बच्चे हो, अभी कुछ नहीं समझते ! चले जाओ यहाँ से।"

इस पर चारों भाई यह कह कर चले गयेः—"बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछिताय।"

१८-श्रीकृष्ण आये !

मर कस कर यदि कोई कुछ करने के लिए कू पड़ता है, तो उसे सफलता मिलने में देर नहं लगती। किसी ने ठीक ही कहा है कि या दुनिया उन्हीं की है, जो साहसी हैं।

कुशल पुरोहित साहसपूर्वक बढ़ता गय और द्वारका में श्रीकृष्ण की राजसभा में ज पहुँचा। वहाँ यथोचित आदर-सत्कार पाने वं बाद कुशलप्रश्न के पूछे जाने पर बोला:—"हाँ, अब तक तो कुशल है, किन्तु अकुशलता के मेघ वहां छाये हुए हैं।"

इस बात से श्रीकृष्ण ने अनुमान लगा लिया कि यह पुरो हित जरूर कोई खास समाचार लेकर आया है। इसलिए सभ से उठ कर इशारे से अपने बड़े भाई बलभद्र को बुला कर कुशल पुरोहित के साथ एकान्त में चले गये और फिर पूछा:—"कह पुरोहितजी! कुन्दनपुर की क्या हालत है?"

"लीजिये! यह चिट्ठी आपको वहां का सारा हाल बता देगी। पढ़ लीजिये!" पुरोहित ने ऐसा कहते हुए श्रीकृष्ण के हाथों में वह चिट्ठी दे दी, जो रुक्मिणी ने उसे दी थी।

सवाल हो सकता है कि बड़े भाई के मौजूद होते हुए भी पुरोहित ने छोटे भाई श्रीकृष्ण को चिट्ठी कैसे दी? जवाब यह होगा कि चिट्ठी में बड़े-छोटेपन का विचार नहीं किया जाता।

सिर्फ इस बात का विचार किया जाता है कि वह चिट्ठी किसके नाम पर भेजी गई है ? जिसके नाम पर भेजी गई हो, उसी को वह चिट्ठी दी जाती है। रुक्मिणी ने चिट्ठी श्रीकृष्ण के नाम पर लिखी थी, तब पुरोहितजी बलभद्रजी को कैसे दे देते ?

चिट्ठी पढ़ते ही श्रीकृष्ण की रोमराजि विकसित हो गई। मन में रक्षा के भाव उमड़ पड़े, फिर भी किसी कार्य को शुरू करने से पहले बड़ों की सलाह लेना जरूरी माना जाता है, इसलिए श्रीकृष्ण ने वह चिट्ठी बलभद्र को देते हुए पूछा:—इसे पढ़ कर बताइये कि वैसी परिस्थिति में हमारा क्या कर्त्तव्य है ?"

बलभद्रजी ने पत्र पढा तो उनकी भी भुजाएँ फड़कने लगीं। बोले:—"भैया ! इसमें पूछने की क्या बात है ? शरणागत की रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है। कन्या, गाय, ब्राह्मण और बच्चे की रक्षा तो प्राण देकर भी करनी चाहिये। कहा है:—

"स क्षत्रियस्त्राणसहः सतां यः ॥"

अर्थात् जो सज्जनों की रक्षा करने में समर्थ हो, वही क्षत्रिय है। हम भी तो क्षत्रिय हैं। यदि हम विपत्ति में पड़ी हुई इस कन्या की रक्षा न कर पायें तो हमारे यदुवंश के लिए यह भारी कलंक की बात होगी। उसकी लग्नतिथि भी कल ही है, इसलिए जल्दी से जल्दी हमें चलने की तैयारी करनी चाहिये।"

यह सुनकर श्रीकृष्ण ने गम्भीरता-पूर्वक कहा:-"लेकिन भाई साहब ! विपक्ष में शिशुपाल है, जो भूआजी का पुत्र होने से अपना भाई है। एक स्त्री को पाने के लिए अपने भाई से युद्ध कैसे करेंगे ?"

इस पर बलभद्रजी बोले:—भाई ! यहाँ स्त्री को पाने की बात मुख्य नहीं है, स्त्रियाँ तो तुम्हारे अन्तःपुर में हजारों हैं। मुख्य बात है-अत्याचार में फंसी हुई एक कन्या की रक्षा। न्याय की रक्षा में कुटुम्बिजनों का विचार नहीं किया जाता। इसलिए शीघ्र चलो। मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ।"

"अच्छी बात है।" ऐसा कह कर श्रीकृष्ण ने गरुड़ध्वज नामक अपने अनुपम रथ को तैयार किया और उसमें बलभद्रजी और कुशल पुरोहित को बिठा कर कुन्दनपुर की दिशा में वे रवाना हो गये। रथ की गति बहुत तेज थी। ऐसा मालूम होता था कि रात-भर में रास्ता पार करके सूर्योदय होते होते कुन्दनपुर जा पहुंचगे।

उधर कुन्दनपुर में भी काफ़ हलचल हो रही थी। रात बीतते ही प्रातः काल रुक्म-कुमार ने धूमधाम से विवाहोत्सव की तैयारी शुरु कर दी। अपने वचन का पालन करने के लिए आज वह अपनी बहिन का विवाह जबर्दस्ती शिशुपाल के साथ करने का निश्चय कर चुका है क्यों कि सिवाय इसके दूसरा कोई मार्ग ही न था।

अपने कक्ष में बैठी हुई रुक्मिणी का हाल भी विचित्र हो रहा था। वह सोच रही थी. कि "क्या आज मुझे अपना प्रण निभाने के लिए आखिर शरीर का त्याग ही करना पड़ेगा ? जिसे मैं चाहती हूँ, वे श्रीकृष्ण क्या नहीं आयेंगे ? आयेंगे तो तभी कि जब कुशलपुरोहित ने मेरी चिट्ठी उनके पास पहुंचाई होगी ! किन्तु पहले तो यही शंका हो रही है कि पुरोहितजी इस महल के आस-पास खड़े हुए नंगी तलवारों के पहरे से पार हुए होंगे या नहीं ? पार होने पर भी रास्ते में कोई विघ्न आ जाने से द्वारका पहुँच

पाये होंगे या नहीं ? श्रीकृष्ण बड़े आदमी हैं-शासक हैं, इसलिए राज्यकार्य की झंझटों में मेरे संदेश की ओर ध्यान दे पाये होंगे या नहीं ? वे कहीं किसी-राजकीय कार्य से पर-देश तो नहीं चले गये होंगे ?......" इस प्रकार के विचारों में डूबी हुई रुक्मिणी सुबह उठते ही अपने कक्ष की छत पर जाकर बैठ गई और टक-टकी लगा कर उस रास्ते की ओर देखने लगी, जो द्वारका से कुन्दनपुर आता था ।

जब काफी देर तक देखते रहने पर भी वह रास्ता खाली मालूम हुआ तो उसकी व्याकुलता बढ गई और आँखों से आँसू बरसाती हुई वह अपने कर्मों की आलोचना करने लगी कि-"समय निकट होने से वे नहीं आये अथवा और किसी कारण से वे नहीं आ सके तो इसमें उनका कोई दोष नहीं, मेरे ही पूर्वभव में संचित किसी कर्म का यह दुष्फल होना चाहिये । इस भव में तो-जहाँ तक मुझे मालूम है, मैंने कभी किसी बेगुनाह को रुलाया नहीं, झूठी बात कही नहीं, चोरी की नहीं, स्वप्न में भी पर-पुरुष की इच्छा की नहीं, परिग्रह भी ऐसा नहीं किया कि दूसरे लोग दाने-दाने को तरसते रहें । इसलिए मालूम होता है कि जरूर इस समय कोई पूर्वजन्म का दुष्कर्म उदय में आया है । कवियों ने कहा है:—

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तः सदा संकटे ।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमःकर्मणे ॥१३॥

—गरुड़पुराणम्

अर्थात् इस ब्रह्माण्डरूपी बर्त्तन को बनाने के लिए ब्रह्मा को जिसने कुम्हार के रूप में नियुक्त किया है, विष्णु को जिसने दशा-

वतार रूपी महान् संकट में सदा के लिए डाल दिया है, शंकरजी के हाथ में कपाल देकर जिसने उन्हें भिक्षा के लिए भ्रमण करवाया है और सूर्य को जो हमेशा आकाश में घुमाता रहता है, उस कर्म को नमस्कार है।

हाय ! मेरे कर्मों को भी उदय में आने का आज ही अवसर मिला ? एक दिन के बाद अर्थात् लग्नतिथि निकल जाने के बाद उदय में आते तो ठीक रहता !......" इस प्रकार चिन्ता में पड़ी हुई रुक्मिणी को देख कर भूआ उसके पास गई और आंसू पोंछती हुई कहने लगी:-"मत रो बेटी ! वे अवश्य आयेंगे। विश्वास रख।"

इतने में रुक्मिणी की बाईं भुजा फड़कने लगी और उसी समय उसकी दृष्टि सड़क पर आते हुए एक रथ पर पड़ी। किन्तु सहसा उसे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। इसलिए उसने पूछा:—'भूआजी ! मैं बहुत दूर सड़क पर धूल उड़ती हुई देख रही हूँ-क्या मुझे इस समय सपना आ रहा है ?"

"नहीं-नहीं बेटी ! तुझे सपना नहीं आ रहा है। यह धूल रथ की ही है और यह रथ भी उन्हीं का है, जिनके आने की तू प्रतीक्षा कर रही है। वह देख रथ और भी निकट आ गया है और उस पर जो ध्वजा लगी है न ? उस पर गरुड़ का चिन्ह है। मैं यह जानती हूँ कि श्रीकृष्ण के रथ पर ही गरुड़ के चिन्ह वाली ध्वजा रहती है। इसलिए आने वाले और कोई नहीं, श्रीकृष्ण ही हैं !"

भूआ की इस अमृतभरी बात को सुन कर रुक्मिणी को अत्यन्त आनन्द हुआ ! परन्तु फिर दूसरे ही क्षण वह चिन्ता में डूब गई। कारण पूछने पर कहा:—"भूआ जी ! शत्रुओं की सेना कितनी विशाल है ? इतनी बड़ी सेना को वे अकेले कैसे जीत

सकेंगे ? उन्हें यदि कुछ हो गया तो उसका निमित्त मैं ही बनूँगी। लोग कहेंगे कि रुक्मिणी ने अपनी हठ पूरी करने के प्रयत्न में अपने पतिदेव का बलिदान कर दिया !" ऐसा कह कर वह रोने लगी। इस पर भूआने प्रेम से उसके सिर पर हाथ फिराते हुए कहा:—"रो मत बेटी! वे बड़े पराक्रमी हैं। आधी सेना तो पाञ्चजन्य नामक शंख की ध्वनि सुन कर ही भाग जायगी। घूमते हुए सुदर्शनचक्र की चमक देख कर बहुत-से योद्धाओं की तो आँखें बन्द हो जायँगी। उनके शार्ङ्ग धनुष्य की टंकार को कोई सुन नहीं सकेगा और फिर उनकी कौमोदकी गदा का प्रहार भी तो कोई सह नहीं सकेगा ? इसलिये वे अकेले ही काफी हैं।"

२०-रथ रोके गये
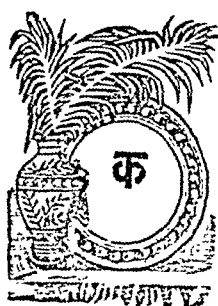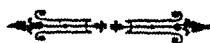
कभी किसी को फाँसी की सजा मिलने के बाद कोई (उसे) अभयदान दे दे तो उसे जितनी प्रसन्नता होती है उससे भी अधिक प्रसन्नता भूआ के मुँह से श्रीकृष्ण की शक्ति का वर्णन सुनकर राजकन्या रुक्मिणी को हो रही थी । उनके प्रचण्ड पराक्रम का वर्णन सुन कर उसे विश्वास हो गया कि सचमुच श्रीकृष्ण अकेले ही सारी सेना के दाँत खट्टे करने को समर्थ हैं ।

रथ बगीचे पर आकर रुक गया । यह देखकर ऊपर से दोनों (रुक्मिणी और भूआ) नीचे आगईं । रुक्मिणी ने कुछ व्याकुल होकर पूछा:—"भूआजी ! रथ बगीचे तक आकर ही क्यों रुक गया ? यहाँ क्यों नही आया ? मिलाप कैसे होगा ?"

"हो जायगा । इतनी चिन्ता क्यों कर रही है ? मैं सारी व्यवस्था करूँगी । बगीचे तक रथ आकर क्यों रुक गया ? यह रहस्य कुशल पुरोहित के आने पर मालूम हो जायगा ।"

भूआ ऐसा कह ही रही थी कि सामने से पुरोहितजी आते हुए दिखाई दिये । भूआ के आश्वासन से और कुशल पुरोहित के दर्शन से रुक्मिणी फिर प्रसन्न हो गई ।

पुरोहितजी ने शुरू से सारा वृत्तान्त ज्यों का त्यों कह सुनाया और बगीचे में ठहरने का रहस्य भी; इससे भूआ को अपना अगला कार्यक्रम निश्चित करने की दिशा मालूम हो गई। यथोचित पुरस्कार देकर पुरोहितजी को बिदा करने के बाद भूआ अपने कार्य में जुट गई। उसने अपने मन में खूब विचार करके ऐसी युक्ति ढूँढ निकाली कि जिससे साँप भी न मरे, लाठी भी न टूटे और रास्ता साफ हो जाय।

वह अपनी भौजाई शिखावती से कहने लगीः—"उदास होकर क्यों बैठी हैं आप ? आज तो लग्नतिथि है-सब लोग खुशियाँ मना रहे हैं।"

शिखावतीः—"लेकिन जिसका विवाह करना है, वह तो मुँह चढ़ा कर बैठी है। अब तक उसने न तेल-उबटन लगवाया न शृङ्गार ही किया है ? ऐसी हालत में मुझे प्रसन्नता कैसे होती ?"

भौजाईः—"मैंने उसे मना लिया है. वह शृंगार करने को तैयार है; इसलिए उदासी छोड़ो और तेल-उबटन के लिए दासियों को भेज दो।"

शिखावतीः—"कैसे राजी किया उसे ? हमारे द्वारा लाख-लाख प्रयत्न करने पर भी जो नहीं मानी, उस रुक्मिणी को तुमने कैसे मना लिया ? तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं हो रहा है। कहीं तुम मजाक तो नहीं कर रही हो न ?"

भौजाईः—"नहीं--नहीं, ऐसे मौके पर कभी मजाक नहीं किया जाता। मैं सच--सच कह रही हूँ कि रुक्मिणी राजी हो गई है। अब तक जो वह नहीं मान रही थी, उसका कारण मुझे मालूम होगया और वह कारण भी ऐसा है कि उसमें दोष हमारा ही साबित होता है, रुक्मिणी का नहीं।"

शिखावती:—"यदि तुम मजाक नहीं कर रही हो तो बार बार धन्यवाद ! किन्तु वह कारण तो बताओ कि क्या था और तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?"

भौजाई:—"स्वप्न से। कल रात को स्वप्न में मुझे कुल-देवी के दर्शन हुए। मैंने पूछा कि रुक्मिणी रूस कर क्यों बैठी है ? तो उसने कहा कि इस कुल में परम्परा से यह रिवाज चला आ रहा है कि जब किसी कन्या की शादी की जाती है तो पहले इस शहर के बाहर बाग बगीचे में जाकर यक्षदेव को द्रव्य-भेंट कर के उसे प्रसन्न करते हैं—इस बार वैसा नहीं किया गया—इसी लिए यक्षराज ने रुक्मिणी की बुद्धि पलट दी और तुम्हारे इस मंगल-कार्य में विघ्न आ गया है। मैं तुम्हारी कुलदेवी हूं, इसलिए हर-तरह के विघ्नों से तुम्हारी रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है, इसी-लिए तुम्हें ऐसी विकट परिस्थिति में सावधान करने आई हूं। अब तुम्हें जल्दी से जल्दी तेल-उबटन शृंगार आदि से सुसज्जित करके रुक्मिणी को भेंट सामग्री के साथ यक्षमन्दिर में ले जाना चाहिये। इससे तुम्हारे सारे विघ्न टलेंगे।

इस प्रकार कुलदेवी की बात सुनते ही मेरी नींद खुल गई और बिछौने का त्याग करके मैंने मन-ही-मन यक्षराज से प्रार्थना की कि हे यक्षराज ! हमारी भूल होगई। माफ़ कीजिये मैं अब जल्दी ही सोलह शृंगारों से सजा कर रुक्मिणी को भेंट सामग्री के साथ आपके पास लाने की कोशिश करूँगी जिससे कि आपका आशीर्वाद उसे मिल सके। कृपा करके रुक्मिणी की उदासी दूर कर दीजिये।

ऐसी प्रार्थना करके ज्यों ही मैं रुक्मिणी के पास गई त्यों ही उसे प्रसन्न देखकर यह सब समाचार सुनाने यहाँ चली आई।

यह सुनकर शिखावती की प्रसन्नता का पार न रहा। उसने सहेलियों को भेजकर तेल-उबटन के बाद शृंगार से रुक्मिणी को सुसज्जित किया। ताजा फल, मेवा, मिष्ठान्न आदि द्रव्य एक सोने को थाल में सजाया गया और फिर भूआ रुक्मिणी को साथ लेकर माता शिखावती के पास आई। रुक्मिणी ने माता को प्रणाम किया, तब भूआ ने कहा:—"भौजाईजी! इसे आशीर्वाद दो कि यह मन से पूजा कर के यक्षराज को प्रसन्न कर सके।"

भूआ अपने मन में समझ रही थी कि वास्तव में यक्षराज की पूजा के बहाने वह श्रीकृष्ण से मिलने जा रही है, इसलिए माता से बिछुड़ते समय बेटी को माता की ओर से आशीर्वाद दिलवा देना चाहिये।

महारानी शिखावती ने रुक्मिणी को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो।

इसके बाद राजपरिवार की अन्य सैंकड़ों स्त्रियों के साथ रुक्मिणी को लेकर मंगलगीत गाती हुई भूआ महल से नीचे आई। नीचे आकर अलग-अलग रथों में सब को बिठा दिया और स्वयं एक रथ में रुक्मिणी के साथ बैठ गई। रथ बगीचे को ओर चल पड़े। सबसे आगे रुक्मिणी वाला ही रथ था।

पहले कहा जा चुका है कि शिशुपाल के सैनिकों ने नगर को चारों ओर से घेर लिया था, इसलिए ये रथ चलते हुए जब नगर के मुख्यद्वार पर पहुँचे तो सैनिकों ने उन्हें रोकते हुए कहा:— "हमारे स्वामी की आज्ञा है कि कोई नगर से बाहर न जाने पाये, इसलिए हम आपको बाहर नहीं जाने दे सकते!"

इस पर भूआ ने जरा फटकारने के स्वर में कहा:—"क्या तुम नहीं जानते कि यक्षराज की नाराजी के कारण अब तक

२१-प्रेम-परीक्षा
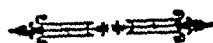
कभी कभी अकस्मात् कोई ऐसी घटना घट जाती है कि उसका कारण समझ में न आने से लोग उसे अलौकिक चमत्कार समझ लेते हैं। यहाँ रुक्मिणी के विषय में भी ऐसा ही हुआ है। माता, भाई भौजाई और मेरी चतुर दासियों के द्वारा समझाये जाने पर भी जो रुक्मिणी नहीं मानी, वह अकस्मात् शादी के लिए राजी हो गई- इसमें कोई न कोई गूढ रहस्य होना चाहिये। रहस्य आखिर कब तक छिपा रहेगा, दिन-दो दिन में प्रकट हो ही जायगा। लेकिन जब तक वह रहस्य प्रकट नहीं हो जाता, तब तक हमें चौकन्ना तो रहना ही चाहिये; अन्यथा यहाँ आने का प्रयोजन ही नष्ट हो जायगा ?..... इस प्रकार विचार करने के बाद महाराज शिशुपाल ने उस सैनिक से कहा:—"रथों को बगीचे में जाने दिया जाय; किन्तु रुक्मिणी के रथ के आस-पास अपने सैनिकों का कड़ा पहरा तब तक रहना चाहिये, जब तक वह लौट कर पुनः नगर में न आ जाय।"

"जो आज्ञा सरकार।" ऐसा कह कर सैनिक वहाँ से दौड़ता हुआ नगर के दरवाजे तक आया और उसने महाराज की आज्ञा सुना दी। रथ बाहर निकल पड़े। रुक्मिणी के रथ के आस--पास चन्देरी के सैनिक नंगी तलवारें हाथ में लेकर साथ ही चल रहे थे। बगीचे के निकट पहुँचने पर भूआ ने अपना रथ रुकवाया तो पीछे-

पीछे आने वाले सारे रथ रुक गये। भूआ अपने रथ से नीचे उतरी तो अन्य सभी स्त्रियाँ नीचे उतर पड़ी।

इसके बाद भूआ ने सबको अपने पास बुला कर कहा:—"बहनो! हम सब राजकन्या के साथ आई हैं जरूर, किन्तु पति की आवश्यकता केवल रुक्मिणी को है। जिसे पति चाहिये, वही यक्षराज को खुश करे। दूसरी बात यह है कि शादी से पहले कन्या के चार मनोरथ होते हैं- अचल सौभाग्य, पति से सन्मान, सौत के दुःख का अभाव और सुपुत्ररत्न की प्राप्ति। पूजा करने के बाद रुक्मिणी यक्षराज से इन चारों मनोरथों की सफलता के लिए आशीर्वाद मांगेगी और उस समय यदि हम सब इसके साथ रहेंगी तो इसे संकोच होगा-लज्जा आयगी-खुलकर दिल से प्रार्थना नहीं कर पायगी। इसलिए मैं चाहती हूँ कि भेंट सामग्री की थाल लेकर रुक्मिणी को अकेली ही मन्दिर में जाने दिया जाय और हम सब यहीं रुक जायँ।"

भूआ की इस बात को सबने स्वीकार किया और सब बगीचे के बाहर ही रुक गईं। इधर पूजा का सजा हुआ थाल रुक्मिणी को हाथ में देकर भूआ ने गद्‌गद कण्ठ से आशीर्वाद देते हुए जाने को कहा। रुक्मिणी भी भूआ के चरणों में कृतज्ञता के आँसू डालती हुई प्रणाम करके वहाँ से यक्षमन्दिर की तरफ रवाना हुई।

रुक्मिणी को अकेली जाती देख कर सैनिक भी उसके साथ जाने लगे तो भूआ ने उन्हें फटकारते हुए कहा:—"खबरदार! एक कदम भी आगे बढ़ाने की कोशिश मत करो। जहां हम औरतें भी नहीं जा सकतीं, वहाँ तुम पुरुष कैसे जा सकते हो?"

सैनिक रुक गये। सोचने लगे कि अकेली लड़की आखिर भाग कर जायगी कहाँ ? हम सारा बगीचा ही घेर कर खड़े हो जाते हैं। वैसा ही हुआ। सारा बगीचा सैनिकों से घिर गया।

उधर रुक्मिणी ने धीरे-धीरे चल कर यक्षमन्दिर में प्रवेश किया। मन्दिर के अहाते में गरुड़ध्वज रथ देख कर उसे विश्वास होगया कि अब मेरी मनोकामना पूर्ण होने वाली है. किन्तु रथ को खाली देख कर वह विचार में पड़ गई। सोचा कि मन्दिर के भीतर आराम कर रहे होंगे श्रीकृष्ण; क्योंकि बहुत दूर से थके हुए आये हैं, इसलिए उन्हें नींद आ गई होगी ! किन्तु यह क्या ? मन्दिर का कोना-कोना ध्यानपूर्वक देख डाला. किन्तु कहीं भी श्रीकृष्ण उसे दिखाई नहीं दिये। अब उसका धैर्य छूट गया। वह करुण स्वर में उन्हें बुलाने की प्रार्थना करने लगी:—

"हे घनश्याम ! आप कहाँ हैं ? मेरा मन-मयूर आपको देखने के लिए छटपटा रहा है।

इन्दुं कैरविणीव कोकपटलीवाम्भोजिनीवान्धवम्
मेघं चातकमण्डलीव मधुपश्रेणीव पुष्पाकरम्।
माकन्दं पिकसुन्दरीव तरुणी प्राणेश्वरं प्रोषितम्
चेतोवृत्तिरियं मम प्रियसखे ! त्वां द्रष्टुमुत्कण्ठते ॥२४॥

— शाङ्गधरपद्धतिः

[अर्थात् कुमुदिनी चन्द्र को, चकवों का झुण्ड सूर्य को, चातकमण्डली मेघ को, भौंरों की पंक्ति पुष्पवाले सरोवर को, कोयल आम को, तरुणी परदेश में गये हुए पति को देखने के लिए जैसे उत्कण्ठित रहती है, वैसे ही हे प्यारे ! मेरी मनोवृत्ति भी आपको देखने के लिए उत्कण्ठित हो रही है।]

यह रथ कह रहा है कि आप हैं तो यहीं. फिर प्रकट क्यों नहीं होते ? क्या आप मुझसे नाराज हैं ? यदि मुझसे कोई भूल हो गई हो तो हे प्राणनाथ ! मुझे क्षमा कर दीजिये और जल्दी से जल्दी दर्शन देकर इन प्यासी आँखों की प्यास मिटाइये।"

श्रीकृष्ण उसी मन्दिर में छिपे हुए थे। सवाल हो सकता है कि तीन खण्ड के अधिपति को छिपने की क्या जरूरत ? क्या वे रुक्मिणी से डरते थे कि जिससे छिपकर जान बचाने का प्रयत्न करने लगे ? नहीं, श्रीकृष्ण निर्भय थे। बड़े-बड़े युद्धक्षेत्र में शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित शूरवीरों का जो छक्का छुड़ाने में समर्थ थे, वे एक शस्त्रहीन अबला नारी से क्या डरते ? वे तो रुक्मिणी के प्रेम की परीक्षा करने के लिए छिपे थे।

प्रेम की परीक्षा के विषय में एक दृष्टान्त याद आ रहा है। हालांकि उसमें पत्नी ने पति की या कन्या ने वर की परीक्षा ली है, फिर भी याद आगया है तो सुना ही देता हूँ।

एक राजकन्या ने यह प्रण किया था कि जो युवक मेरी परीक्षा में पास होगा, मैं उसी को प्राणनाथ बनाऊँगी। राजकन्या काफी पढ़ी-लिखी और सुन्दर थी, इसलिए बहुत-से राजकुमार उसे चाहते थे, फिर भी उसके प्रण की बात कुछ ऐसी थी कि कोई आने का साहस नहीं कर पाया। वे लोग सोचते कि एक कन्या हमारी परीक्षा ले-यही गौरव के लिए कलंक की बात है फिर यदि उसकी परीक्षा में फैल होगये तो कन्या तो मिलेगी ही नहीं, उल्टे जीवनभर के लिए ऐसी बदनामी हो जायगी कि हम किसी को मुँह दिखाने लायक भी नहीं रहेंगे।

एक दिन एक राजकुमार ने विचार किया कि वह कैसी परीक्षा लेना चाहती है--यह जानने में क्या हरकत है ? परीक्षा

२२-व्यर्थ विरोध

करुणाजनक मधुर शब्दों को सुन कर श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का हृदय पहिचान लिया। जान लिया कि उसका मेरे प्रति घनिष्ठ प्रेम है, तब वे तुरन्त प्रकट हो गये। उन्हें देखते ही रुक्मिणी की आँखों से हर्ष के आँसू बह निकले। चरणों में प्रणाम करके उसने कहा:—

"महीनों से आपके दर्शन की तीव्र अभिलाषा थी, जो सौभाग्य से आज पूर्ण हुई है। पाणिग्रहण करके मुझे अब अपनी सेवा का अवसर दीजिये।"

श्रीकृष्ण ने भी सिर पर हाथ फिराते हुए प्रेम से कहा:— "तुम्हारे हृदय में मेरे लिए कितना प्रेम है-यह जानने के ही लिए तुम्हें इधर आती हुई देख कर मैं छिप गया था। मेरी प्रेम-परीक्षा में तुम पूरी तरह से उत्तीर्ण हुई हो, इसलिए मेरे मन में तुम्हारे लिए बहुत ऊँचा स्थान बन गया है। आज से तुम मुझे अपना ही समझो।"

ये बातें हो रही थीं कि इतने में उधर से बलभद्रजी ने भीतर प्रवेश किया। रुक्मिणी सकुचा कर एक तरफ खड़ी हो गई। बलभद्रजी ने कहा:—"भैया! अब देर मत करो।"

श्रीकृष्ण ने परमेश्वर की तथा अपने और रुक्मिणी के मन की साक्षी से रुक्मिणी का पाणिग्रहण किया। ब्राह्मण, अग्नि,

पंच आदि से परमात्मा की या मन की साक्षी ही अधिक बड़ी होती है। जैसा कि एक मराठी कवि ने कहा है:—

मना सारसी गवाही। त्रिभुवनांत नाहीं ॥

साथ में लाई हुई वर-माला रुक्मिणी ने भी श्रीकृष्ण के गले में डाल दी और फिर तीनों गरुड़ ध्वज रथ में सवार हुए।

बलभद्रजी रथ हांकने लगे तो श्रीकृष्ण ने कहा:—"नहीं भैया! आप क्यों कष्ट उठाते हैं? रथ मुझे ही हांकने दीजिये। आपको अभ्यास भी नहीं है-रथ हांकने का। कौरव-पाण्डवों के युद्ध में मैंने अर्जुन का रथ हांका था, इसलिए मुझे अच्छा अभ्यास है।"

बलभद्रजी ने कहा:—"कोई भी काम करते रहने से ही आता है। मुझे रथ हांकने का अभ्यास नहीं है तो हांकते-हांकते हो जायगा। आते समय रथ को जल्दी से जल्दी कुन्दनपुर तक लाने का सवाल था इसलिए उस समय तुमने रथ हांक लिया। अब जाते समय वैसा कोई सवाल नहीं है, इस लिए मुझे ही हांकने दो। तुम भीतर बैठ जाओ।"

श्रीकृष्ण बलभद्र के हठीले स्वभाव से परिचित थे, इसलिए वे उनका आग्रह टाल न सके और रुक्मिणी के साथ रथ में भीतर बैठ गये। रथ रवाना होकर फाटक पर आया। फाटक के बाहर रुक्मिणी की प्रतीक्षा में भूआ के साथ सैंकड़ों औरतें खड़ी थीं। उन सबकी दृष्टि रथ में किसी तेजस्वी पुरुष के साथ बैठी हुई रुक्मिणी पर पड़ी। सबने ज़ोरों से पुकार कर कहा:—"हमें छोड़ कर कहां जा रही हैं राजकुमारीजी? क्यों जा रही हैं? किसके साथ जा रही हैं?"

हम सब चकित हो गईं। सचमुच वे बड़े सुन्दर हैं। आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें।"

शिखावती:—"श्रीकृष्ण वहाँ आ कैसे गया ?"

"यह भेद हमें नहीं मालूम। हम तो सिर्फ इतना ही जानती हैं कि रुक्मिणी भेंट सामग्री की थाल लेकर अकेली ही यक्षमन्दिर में गई। भूआ के कहने से हम सब बगीचे के फाटक के बाहर ही खड़ी रहीं और थोड़ी ही देर बाद बगीचे से बाहर एक रथ आता हुआ दिखाई दिया, जिसमें श्रीकृष्ण के साथ रुक्मिणी बैठी थी।"

स्त्रियों की यह बात सुनते ही महारानी शिखावती ने समझ लिया कि यह सारी करतूत ननन्द की होनी चाहिये, इसलिए कुछ दासियों के साथ उसी समय वह उठ कर ननन्द के निवास-भवन में गई। भौजाई के आने का कारण समझ कर भी ननन्द ने उसका स्वागत किया और उच्च आसन पर बैठने को कहा, किन्तु स्वागत को अस्वीकार करके भौजाई (शिखावती) ने उपालम्भ के स्वर में कहा:—"महाराज शिशुपाल चन्देरी से यहाँ बड़ी सजधज के साथ मौड़ बाँध कर आये हैं और तुमने एक ग्वाले के साथ रुक्मिणी को रवाना करदी ! यह तुमने क्या किया ननन्द ?"

ननन्द:—"जो उचित था, वही किया भौजाईजी ! पतिव्रता कन्या का पति के साथ जाना ही उचित है, फिर भले ही हजारों आदमी मौड़ बाँध कर क्यों न आये हों ?"

भौजाई:—"वाह-वाह ! क्या बात कही है तुमने ? अरे, जिन्हें हमने बुलाया है--जो हमारा टीका स्वीकार करके हमारे भरोसे यहाँ आये हैं, वे तो खाली हाथ लौटें और जिसको हमने बुलाया नहीं, वह आकर हमारी कन्या ले जाय, बल्कि उसे ले जाने

में मदद की जाय और इसके लिए घर के लोगों को भी धोखा दिया जाय-- यह कितना बड़ा अन्याय है? ऐसे अन्याय को तुम उचित बता रही हो? आज तुम्हारी अक्ल ठिकाने भी है या नहीं?"

ननन्द:—"बिल्कुल ठिकाने पर है भौजाईजी! म० शिशुपाल के साथ जबर्दस्ती शादी कर देने पर रुक्मिणी का दाम्पत्य-जीवन कभी सुखमय नहीं बन सकता था, क्योंकि वह उन्हें जरा भी नहीं चाहती। श्रीकृष्ण के साथ ही वह सुखपूर्वक रह सकती है, क्योंकि वह उन्हें अन्तःकरण से चाहती है। कन्या के सुख का विचार करना माता का पहला कर्त्तव्य है। पुत्रमोह के कारण विवेकशून्य होकर यदि माता अपने उस कर्त्तव्य को भूल जाय तो क्या भूआ भी भूल जाय? इस बात के लिए तो उल्टा मुझे धन्यवाद मिलना चाहिये कि ऐसे मौके पर जो आपका कर्त्तव्य थो, उसे मैंने कर दिखाया!"

यद्यपि ननन्द (भूआ) की इस बात से भौजाई (शिखावती) के गुस्से का आधा नशा उतर गया और उसे कुछ-कुछ अपनी भूल भी मालूम होने लगी थी, फिर भी सहसा औरतों का मुँह बन्द नहीं होता। थोड़ी देर सोचकर उसने फिर मुँह खोला:—"तुम ने अपने विचार से भले ही कैसा भी कार्य किया हो, किन्तु इतना जरूर कहना पड़ेगा कि समुद्र में रह कर मगर से वैर नहीं किया जाता! घर में रह कर घर के विरुद्ध कार्य नहीं करना चाहिये था तुम्हें।"

ननन्द:—"यह नीति आप स्वयं अपने पर लागू क्यों नहीं करती? क्या आपको पतिदेव के साथ रह कर भी उनके विरुद्ध कार्य करना चाहिये था?

मेरी बात दूसरी है, क्योंकि घर में रहकर मैंने घरवालों के विरुद्ध कार्य भले ही किया हो, किन्तु न्याय के विरुद्ध नहीं किया। खैर, इन बातों से अब लाभ भी क्या है। होना था, सो तो हो ही गया। बुद्धिमत्ता की बात तो यह है कि अब आगे होने वाले अनर्थ से बचने की कोशिश की जाय!"

भौजाई:—"आगे कौन-सा अनर्थ होने वाला है? मुझे तुम्हारी बात समझ में नहीं आरही है।"

ननन्द:—"तो समझ लीजिये। मैं कहना चाहती हूँ कि अब आप रुक्मकुमार को समझा दें कि वह शान्त रहे। क्रोध करके यदि उसने कहीं आक्रमण कर दिया तो शिशुपाल की विशाल सेना भी श्रीकृष्ण की कोपाग्नि से उसे बचा नहीं सकेगी।"

भौजाई:—"बेटा बड़ा हठीला है, उसे समझाना मेरे बस की बात नहीं है, फिर भी अपनी ओर से समझाने का प्रयत्न तो करूँगी ही।"

ऐसा कह कर महारानी शिखावती अपने निवास-भवन में चली आई। आज उसके मन में अनेक तरह के विचार आ रहे थे। पश्चात्ताप की अग्नि से उसका हृदय जलने लगा कि बेटे की बातों में आकर मैंने व्यर्थ ही पतिदेव का विरोध किया!
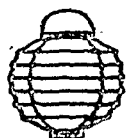
२३-युद्ध की तैयारी
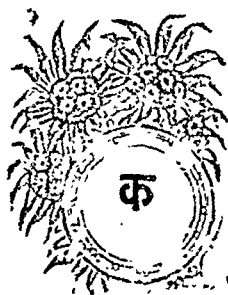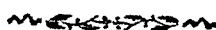
लंक महापुरुष को भी लग सकता है, यदि वह जरा--सी भी असावधानी कर जाय। सन्तों का कर्त्तव्य है कि वे ऐसे प्रसंग पर सावधान रहने की सूचना कर दें। जो उनकी सूचना पर ध्यान देता है, वह उस कलंक से बच जाता है। जो ध्यान नहीं देता, वह फँस जाता है।

यद्यपि कुशलपुरोहित के द्वारा मिली हुई रुक्मिणी की चिट्ठी से उन्हें मालूम हो गया था कि शिशुपाल अपनी और अपने सहायक राजाओं की विशाल सेनाएँ साथ लेकर कुन्दनपुर आया है, फिर भी श्रीकृष्ण अकेले ही अपने बड़े भाई के साथ वहाँ चले आये थे, क्योंकि उन्हें अपनी शक्ति पर भरोसा था, वे शूरवीर थे, किन्तु रुक्मिणी को इस प्रकार रथ में बिठा कर ले जाने से उन पर कायरता का कलंक लग सकता था ! इसलिए सन्त नारद उन्हें सावधान करने के लिए आकाश मार्ग से श्रीकृष्ण के गरुड़ध्वज रथ के निकट आये और कहने लगे:—

"धन्य है आपके पराक्रम को !"

"कौन ? नारदजी ! आइये। इस समय कैसे कष्ट उठाया आपने ?"

"इसीलिए कि जरा आपकी बहादुरी की तारीफ़ कर दूं।"

"आपकी तारीफ का मतलब मैं खूब समझता हूँ। जब भी आप किसी की प्रशंसा करते हैं, तो उसमें निन्दा भरी रहती है। शायद आप मेरे किसी कार्य से रुष्ट हो गये हैं।"

"नहीं राजन्! सन्त कभी रुष्ट नहीं होते। वे तो सब का भला चाहते हैं। इस लिए जो आवश्यक सूचनाएँ होती हैं, उनसे मनुष्यों को सावधान किया करते हैं। मैं आपको यह कहने आया हूँ कि बचपन की आदत अब आपको छोड़ देनी चाहिये।"

"कौन-सी आदत के विषय में आपका संकेत है?"

"उसी माखन चुराने की आदत के विषय में!"

"अभी कौनसा माखन चुराया मैंने?

"माखन तो नहीं चुराया, किन्तु माखन के समान कोमल अंग वाली रुक्मिणी को तो चुरा ही लाये न?"

"यह कैसी बात कह रहे हैं आप? रुक्मिणी की रक्षा करने के लिए आप ही ने तो कहा था और फिर आप ही उसे चोरी बता रहे हैं?"

'रक्षा अच्छी बात है, चोरी बुरी। मैंने रक्षा करने के लिए तो कहा था, किन्तु यह कब कहा कि रुक्मिणी को चुपके से चुरा लाना? आप जैसे शूरवीरों के लिए यह कृत्य शोभाजनक नहीं है। इससे आपके शत्रु-पक्ष को भी निन्दा करने का मौका मिलेगा और इस तरह आपके शुभ्र यश पर यह कार्य काला कलंक बन कर चमकने लगेगा!"

"आप ठीक कह रहे हैं ऋषिराज! पर अब मुझे करना क्या चाहिये?

"यह प्रश्न राजनीति से सम्बन्ध रखता है, इसलिए क्या करना चाहिये? इसका ठीक-ठीक निर्णय आप स्वयं ही कर लीजिये। मेरा काम होगया! अच्छा, अब मैं चलता हूँ।"

ऐसा कह कर नारदजी अदृश्य होगये। श्रीकृष्ण ने रथ रोक दिये जाने की सलाह देते हुए अपने बड़े भाई बलभद्रजी से पूछा कि अब क्या करना चाहिये? रथ रोक कर बलभद्रजी बोले कि शंख ध्वनि करनी चाहिये, इससे सारी प्रजा को तथा शिशुपाल और रुक्म की सेना को यह सूचना मिल जायगी की रुक्मिणी हमारे पास है और उसे हम ले जा रहे हैं। इससे कोई हम पर चोरी का आरोप नहीं लगा सकेगा।

यह सुनते ही श्रीकृष्ण ने अपना अद्वितीय अनुपम पाञ्चजन्य नामक शंख निकाला और उसे फूँकने लगे। उसकी प्रचण्ड ध्वनि से सारे नगरनिवासी विस्मित हो गये, शिशुपाल और रुक्म क्रुद्ध होकर युद्ध की तैयारी में लग गये और दोनों की विशाल सेनाएँ काँपने लगीं।

नागरिकों ने विचार किया कि अब युद्ध की परिस्थिति अनिवार्य हो गई है, किन्तु यह घोर अन्याय है कि शिशुपाल, रुक्म और श्रीकृष्ण के संघर्ष में लाखों सैनिकों का संहार हो तथा उनके माँ-बाप निर्वंश हों और उनकी पत्नियाँ असमय में ही विधवाएँ बन जायँ। इस अन्याय को मिटाने के लिए एक ही उपाय है कि यह युद्ध किसी तरह रोक दिया जाय। यद्यपि शिशुपाल और रुक्म श्रीकृष्ण के विरोधी हैं, इसलिए शायद ही युद्ध रोकने का प्रस्ताव स्वीकार करें, फिर भी हमें अपनी ओर से एक बार उन्हें समझाने का प्रयत्न तो करना ही चाहिये। रुक्म से भी अधिक शिशुपाल को समझाने की आवश्यकता है, यदि वह चुपचाप चन्देरी की तरफ लौट जाय तो फिर रुक्म भी शान्त हो जायगा।

ऐसा विचार करके कुन्दनपुर के अग्रगण्य (प्रमुख) नागरिक एकत्रित होकर म० शिशुपाल के डेरे पर पहुंचे। फिर उनमें इस प्रकार बातचीत हुई:—

शिशुपाल:—कहिये ! आप सब लोगों ने इस समय किस प्रयोजन से यहाँ आने का कष्ट उठाया है ?

प्रमुख नागरिक:—हम देख रहे हैं कि आप युद्ध के लिए सेना को तैयार करने में लगे हैं। हम चाहते हैं कि आप यह युद्ध बन्द कर दें। यही प्रार्थना करने के लिए हम यहाँ आये हैं।

शि०:—युद्ध बन्द करने से क्या लाभ होगा ?

प्र० ना०:—लाखों सैनिक जो इस युद्ध की ज्वाला में स्वाहा होने वाले हैं, उनकी रक्षा होगी। इससे आपको अभयदान का अखूट पुण्य मिलेगा।

शि०:—आप ठीक कहते हैं। युद्ध में सचमुच घोर नरसंहार होता है। मैं युद्ध स्वयं भी पसंद नहीं करता, किन्तु परिस्थिति ने मुझे युद्ध के लिए विवश कर दिया है। मैं अन्यायी को दड दिये बिना कैसे रह सकता हूँ ? राजा का यह धर्म है कि वह चोरों को सजा दे। ग्वाला चुपके से यहाँ बिना बुलाये चला आया और आकर उसने यहाँ की उस राजकन्या पर छापा मार दिया, जिससे मैं शादी करने आया हूँ। उसका यह दुःसाहस अक्षन्तव्य है।

प्र० ना०:—कन्या जिसे चाहे, वही उसका पति माना जा सकता है। हमने सुना है, कि रुक्मिणी काफी समझाये जाने पर भी आप से शादी करने को राजी नहीं हुई थी, क्यों कि वह श्रीकृष्ण को ही चाहती थी। यह बात श्रीकृष्ण भी जानते थे। किसी ऐसे पुरुष के साथ कन्या की शादी करना, जिसे वह नहीं चाहती-एक

प्रकार का अत्याचार है; इस अत्याचार से रुक्मिणी की रक्षा करने के लिए ही श्रीकृष्ण यहाँ आये और रुक्मिणी को ले जा रहे हैं। इसलिए उनका यह साहस प्रशंसनीय ही माना जा सकता है, दण्डनीय नहीं ।"

शि०:—तो तुम्हारा आशय यह है कि मुझे युद्ध बन्द करके चन्देरी लौट जाना चाहिये ?

प्र० ना०:—जी हाँ, हम आपसे यही प्रार्थना करना चाहते हैं।

शि०:—लेकिन आप लोग यह क्यों नहीं सोचते कि मैं यहाँ खाली घूमने नहीं आया हूँ, किन्तु यहाँ के महाराज भीम का जामाता बन कर आया हूँ। राजकन्या से शादी करने के लिए बारात लेकर आया हूं। मेरी प्रजा चन्देरी में नव-वधू को देखने के लिए उत्सुक हो रही होगी–ऐसी हालत में यदि मैं खाली हाथ लौटूंगा तो प्रजाजन मुझे क्या कहेंगे ? मैं उनके सामने कौनसा मुँह लेकर जाऊँगा ?

प्र० ना०:—सचमुच यह बात हमें भी खटक रही है कि आप जब दूल्हे बन कर आये हैं, तब खाली हाथ कैसे लौट सकेंगे ? किन्तु इसके लिए एक ही उपाय है और वह यह कि हम आपका विवाह राजपरिवार की किसी दूसरी कन्या से करवा दें। क्या आप इसके लिए तैयार हैं ?

शि०:—बिल्कुल नहीं। मैं रुक्मिणी को ब्याहने आया हूँ, इसलिए उसी के साथ ब्याह करूँगा। उस दिन रुक्मिणी ने मुझे भी देख लिया था, जिस दिन मेरी विशाल नगर-यात्रा निकली थी और आज उसने काले कलूटे ग्वाला के छोकरे को भी देख लिया है, इसलिए हो सकता है, कि वह दोनों की तुलना में मेरे सौन्दर्य और वैभव को श्रेष्ठ समझ कर मुझे चाहने लगी हो।

प्रमु० ना०:—यदि ऐसा ही है तो हम श्रीकृष्ण के पास जा कर रुक्मिणी को ले आते हैं और महाराज भीम के सामने स्वयंवर का प्रस्ताव रखते हैं। उस स्वयंवर में रुक्मिणी जिसके भी गले में वरमाला डाल दे, उसी के साथ धूमधाम से उसका विवाह कर दिया जाय।

शि०-:वरमाला की राह देखते हैं कायर, शूरवीर। नहीं मेरी भुजाओं में बल है तो मैं श्रीकृष्ण को युद्ध में परास्त करके रुक्मिणी को वर कर ले हो जाऊँगा। अब तक रुक्मिणी ने मेरा वैभव और सौन्दर्य ही देखा है, पराक्रम नहीं। इस युद्ध में मेरा पराक्रम भी वह देख लेगी।

प्र० ना०:—हम तो आपकी ही भलाई के लिए समझाने आये थे; इसमें हमारा कोई स्वार्थ नहीं है; फिर भी यदि आप युद्ध करने की प्रबल इच्छा को दबा नहीं सकते तो श्रीकृष्ण के साथ द्वन्द्व-युद्ध कर लीजिये, जिससे कि दोनों को एक-दूसरे की शक्ति का परिचय भी मिल जाय और दोनों के संघर्ष में व्यर्थ ही लाखों निरपराध सैनिकों के प्राणों का संहार भी न हो!

शि०:—हाँ, अब समझ में आया कि तुम श्रीकृष्ण के सिखाये हुए दूत बन कर आये हो। वह ग्वाला सोचता होगा कि मैं अकेला हूँ, सो म० शिशुपाल भी अकेले होकर युद्ध करें। सेना को बीच में डालने से मेरी विजय हो नहीं सकेगी, इसीलिए द्वन्द्व-युद्ध का प्रस्ताव रखने के लिए तुम्हें सिखा-पढ़ा कर यहाँ भेजा है, किन्तु शिशुपाल इतना भोला नहीं है कि वह उस ग्वाले की चालबाजी में फँस जाय!
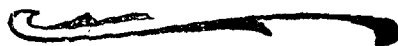
२४-भाई को न मारने का वचन

हना न मान कर शिशुपाल ने उल्टे नागरिकों पर ही श्रीकृष्ण के दूत बन कर आने का आरोप लगाया। इससे नागरिकों को दुःख हुआ और उन्होंने स्पष्टीकरण करते हुए कहा:—"राजन्! आप व्यर्थ ही हम पर आरोप लगा रहे हैं। हमने तो अब तक श्रीकृष्ण को देखा तक नहीं है। उनके पाञ्चजन्य शंख की ध्वनि सुन कर हमने अनुमान लगा लिया कि रुक्मिणी उनके पास पहुँच चुकी है और उसी ध्वनि से उत्तेजित होकर आप युद्ध की तैयारी में लगे हैं। महाराज! यह निश्चित है कि युद्ध में घोर-नरसंहार होता है। हजारों विधवाएँ बन जाती हैं! सैंकड़ों माँ-बाप अपने जवान बेटे को खो कर इतने दुःखी होते हैं कि वे प्रयत्न करके भी अपने आँसू रोक नहीं पाते! उन सब पर दया आने से ही हम इस निर्दयता के व्यवहार को-युद्ध को बन्द करने की प्रार्थना करने के लिए आपके पास चले आये हैं।"

शिशुपाल:—"यह सब उपदेश उस कालिये को जाकर क्यों नहीं समझाते! रुक्मिणी मेरी पत्नी है, उसे कोई चुरा कर ले जाये और फिर भी मैं शान्त रहूँ—ऐसा कैसे हो सकता है? युद्ध रोकना ही है तो उस ग्वाल को कहो कि वह रुक्मिणी को रथ से

उतार कर 'यह मेरी बहिन है' ऐसा कह दे। यदि उसने ऐसा किया तो फिर मैं युद्ध नहीं करूँगा।"

प्रमुख नागरिकः—"महाराज ! हमें तो श्रीकृष्ण का कोई कसूर नहीं मालूम होता, सो उन्हें समझायें क्या ?"

शिशुपालः--"जब तुम लोग एक ग्वाल के छोकरे को भी समझा नहीं सकते, तो फिर चन्देरी के महाराज को समझाने के लिए कैसे चले आये ? बाल सफेद हो जाने से ही अक्ल सफेद नहीं हो जाती ! लौट जाओ चुपचाप; अन्यथा धक्के खाकर निकलना होगा !"

प्र० ना०:—"जाते हैं महाराज ! किन्तु इतना अवश्य कह जाते हैं कि श्रीकृष्ण से युद्ध करना हँसी--खेल नहीं है। यदि हमारी सलाह न मानकर युद्ध किया तो अन्त में आपको पछताना पड़ेगा।

ऐसा कहकर नागरिकों ने अपनी राह ली। शिशुपाल के हृदय पर उनके अन्तिम वाक्यों का भी कोई असर नहीं हुआ।

नागरिकों के जाने के बाद म० शिशुपाल ने अपने सेनापति तथा सहायक राजाओं को बुलाकर कहा:—"सहयोगी सुभटो ! कुन्दनपुर के चारों ओर कड़ा पहरा रहते हुए भी न जाने कहाँ से कालिया आकर राजकन्या को चुरा ले जा रहा है ? हम सबको चकमा देकर उसने हमारी शक्ति को चुनौती दी है ! वह दूध-दही चुराते-चुराते अब राजकन्या भी चुराने लगा है। यदि राजकन्या को हम उस ग्वाल के पंजे से छुड़ा कर न ला सके तो यह अपनी घोर कायरता कहलायगी। इतना ही नहीं, यहाँ आने का अपना मुख्य प्रयोजन ही नष्ट हो जायगा ! इसलिए अब हमें जरा भी देरी न करते हुए उस पर आक्रमण करके उसे बता देना चाहिये कि चोरी का नतीजा कैसा होता है ?"

इससे उत्तेजित होकर सेनापति ने कहा:— 'इसके लिए सबको कष्ट उठाने की क्या जरूरत है? मामूली-सी तो बात है! मैं अभी कुछ सैनिकों के साथ जा कर उस ग्वाले को पकड़ लाता हूँ--आपके सामने। आप की सिर्फ आज्ञा का ही इन्तजार में हूं!"

प्रसन्न होकर शिशुपाल ने कहा:—"शाबास! मुझे विश्वास है, कि तुम सचमुच वैसा ही कर दिखाओगे कि जैसा कह रहे हो। यद्यपि तुम अकेले भी यह काम कर सकते हो, किन्तु फिर भी मेरी इच्छा है कि अपनी सेना में से चुने हुए खास--खास सनिकों को साथ ले कर ही तुम जाओ तो ठीक रहेगा।"

"जैसी आपकी आज्ञा।" ऐसा कह कर चुने हुए सुभटों के साथ सेनापति श्रीकृष्ण की तरफ चल पड़ा।

उधर श्रीकृष्ण के पास बैठी हुई रुक्मिणी ने जब यह देखा कि टिड्डीदल के समान शिशुपाल की सेना चली आ रही है और इधर श्रीकृष्ण के साथ कोई सैनिक नहीं है, तो वह इस विचार से व्याकुल होकर रोने लगी कि "अकेले दो व्यक्ति भले ही कितने भी शूरवीर क्यों न हों? हजारों सैनिकों के सामने कैसे टिक पायँगे?"

श्रीकृष्ण ने रोती हुई रुक्मिणी के आँसू पोंछते हुए कहा:— "प्रिये! तुम रोती क्यों हो? क्या तुम्हें यहाँ किसी प्रकार का कष्ट है?"

रुक्मिणी:—"नहीं, प्राणनाथ! मुझे यहाँ किसी प्रकार का कष्ट नहीं है।"

श्रीकृष्ण:—'तो क्या तुम्हें पीहर वालों की याद आ गई है? यदि यही बात हो तो, मैं तुम्हें अभी सुरक्षित रूप से राजमहल में पहुंचा देता हूँ।"

रुक्मिणी:—"पतिव्रता को पति के साथ रहने में ही अधिक प्रसन्नता होती है, पीहर में नहीं।"

श्रीकृष्ण:—"तो फिर आँसू बहाने का कारण क्या है? किस बात की चिन्ता है?"

रुक्मिणी:— 'चिन्ता का यही कारण है कि सिर्फ दो भाई इतनी प्रचण्ड सेना का सामना कैसे कर सकेंगे? यद्यपि मैंने शास्त्रों से "युद्धे शूरा वासुदेवाः" ऐसा सुना है, फिर भी देखा जाता है कि कठोर लोहे को भी हल्के प्रज्वलित अंगारे पिघला कर पानी बना देते हैं।"

श्रीकृष्ण ने हँसते हुए कहा:—"शेर की एक दहाड़ सुन कर भी क्या हजारों सियार टिक पाते हैं? सूर्य की एक छोटी-सी किरण के उदय होने पर भी क्या सारे संसार को काला करने वाला घोर अँधेरा ठहरता है? नहीं। ठीक उसी प्रकार हाथ में शस्त्र उठाते ही ये सारे सैनिक भाग खड़े होंगे! तुम निश्चिन्त रहो।"

यह सुनते ही रुक्मिणी को क्षणभर प्रसन्नता हुई, किन्तु दूसरे ही क्षण फिर उसके मन में एक विचार उठा। उस विचार से वह इतनी व्याकुल हुई कि उसकी सारी प्रसन्नता पर पानी फिर गया। चेहरा उदास हो गया। हाथ काँपने लगे। यह देख कर श्रीकृष्ण ने फिर पूछा :—"प्रिये! तुम्हारा दिल बहुत कोमल है। क्या मेरी बात पर तुम्हारा ध्यान नहीं गया? क्या तुम्हें मेरी शक्ति पर भरोसा नहीं हुआ है; जो फिर रोने लगी?

रू०:—"मुझे आपकी शक्ति पर पूरा भरोसा हो गया है, इसीलिए मुझे चिन्ता हो रही है!"

श्रीकृष्ण:—"मैं तुम्हारा आशय समझ नहीं सका हूँ; जो कुछ कहना है, साफ-साफ कहो!"

रु०:—"मैं सोच रही हूँ कि कन्या वही आदर्श मानी जाती है, जो दोनों कुलों का भला चाहे। शिशुपाल की सेना के परास्त होते ही अपने मित्र की पराजय का बदला लेने के लिए मेरा भाई रुक्म भी आप से युद्ध करने के लिए अवश्य आयेगा और जब आपके बाणों से छिन्नभिन्न होकर वह वीरगति को प्राप्त होगा तो मैं पितृ-वंशघातिनी कहलाऊँगी।"

श्रीकृष्ण:—"तुम ठीक ही सोचती हो, किन्तु मैंने सुना है कि रुक्मकुमार के अतिरिक्त तुम्हारे चार भाई और हैं; सो पिता के बाद वे राज्य की बागडोर सम्हाल ही लेंगे। एक रुक्म के परम धाम पहुँचने से पिता का वंश कैसे नष्ट हो जायगा?"

रु०:—"जब बड़ा भाई रुक्मकुमार अपने मित्र की पराजय भी नहीं सह सकता, तो वे चार भाई अपने बड़े भाई की मृत्यु कैसे सह लेंगे? आखिर उनमें भी खून तो वही है, जो रुक्मकुमार में है। इसलिए रुक्मकुमार की मृत्यु से उत्तेजित होकर चारों भाई जब समरांगण में युद्ध करके आपके हाथों से वीरगति को प्राप्त होंगे। तब पितृवंश नष्ट हो ही जायगा।"

श्रीकृष्ण:—प्रिये! मैं तुम्हारे इन पवित्र विचारों से बहुत प्रसन्न हुआ हूं। सचमुच एक सुयोग्य कन्या को दोनों कुलों की कुशल-कामना करनी ही चाहिये। मैं तुम्हें वचन देता हूं कि तुम्हारे बड़े भाई रुक्मकुमार का वध न करूँगा।"

श्रीकृष्ण की इस प्रतिज्ञा से रुक्मिणी फिर प्रसन्न हो गई।
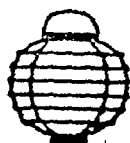
२५-युद्ध हुआ !
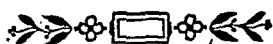
कहने की आवश्यकता नहीं कि सेनापति ने अपने साथी सैनिकों के द्वारा गरुड़ध्वज रथ को चारों ओर से घेर लिया और श्रीकृष्ण को यह सूचित करने के लिए कि हम लोग युद्ध करने आये हैं, शंखध्वनि की।

उनकी शंखध्वनि का आशय समझ कर श्रीकृष्ण ने भी प्रत्युत्तर में अपने पाञ्चजन्य शंख को फूँका! पाञ्चजन्य की प्रचण्ड ध्वनि से श्रीकृष्ण की शक्ति की कल्पना करके ही आधे सैनिक भाग गये। बचे हुए सैनिकों को प्रोत्साहन देते हुए सेनापति ने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई और जोरों से बाणों की वृष्टि करने लगा। सैनिक भी "मारो-पकड़ो" ऐसी आवाज करते हुए साहस के साथ आगे बढ़े और बाण पर बाण चलाने लगे। यह सब देख कर श्रीकृष्ण कब चुप रहते? उन्होंने भी अपना शारंग नामक धनुष उठाया और विशेष प्रकार के बाणों से आने वाले बाणों को बीच ही में काटने लगे। अन्त में एक बाण ऐसा छोड़ा कि जिसके प्रहार से सेनापति भूमि पर सदा के लिए सो गया। सेनापति के दिखाई न देने से बची-खुची सेना भी वहाँ से भाग खड़ी हुई।

श्रीकृष्ण ने जब देखा कि मैदान खाली हो चुका है, तब उन्होंने विजयसूचक शंख ध्वनि की।

सेनापति के काम आने की खबर मालूम होते ही म० शिशुपाल अपने सभी सहायक राजाओं और उनकी सेनाओं के साथ स्वयं समरांगण में कूद पड़े। करोड़पति जूए में हजार-दो हजार रुपये हार भी जाय तो पर्वाह नहीं करता। शतपदी (गोम) के ४-६ पाँव टूट भी जायँ तो इसी से वह लँगड़ी नहीं हो जाती। इसी प्रकार म० शिशुपाल ने भी सेनापति के साथ मारे गये सैनिकों की पर्वाह नहीं की।

दूर से आते हुए सैनिकों के बीच में शिशुपाल को पहिचान कर बलभद्रजी ने श्रीकृष्ण को कहा:—"भैया! कहीं शिशुपाल का वध मत कर बैठना। भूआ को दिये हुए वचन का खयाल रखना। उसे पराजित करके रणस्थल से भगा देना ही काफ़ी है। अपमान का दुःख मौत से कम नहीं होता!"

सज्जनो! तेज दौड़ने वाली बहुमूल्य मोटर की शोभा तभी है, जब उसमें बढ़िया ब्रेक हो कि जो ड्राइवर के संकेत को पाते ही मोटर को जहाँ की तहाँ खड़ी कर दे। ब्रेक के बिना बहुमूल्य मोटर का भी विश्वास नहीं किया जाता; ठीक उसी प्रकार संसार में भी वही मनुष्य विश्वसनीय माना जाता है कि जिस पर गुरुजनों का अंकुश हो। जो विनयपूर्वक बड़ों की आज्ञा का पालन करता हो। श्रीकृष्ण ने भी अपने बड़े भाई की आज्ञा को स्वीकार किया! क्यों कि वे बड़े विनीत और आज्ञापालक थे।

शिशुपाल को विश्वास था कि श्रीकृष्ण अपने वचन के पक्के हैं, इसीलिए मेरी माता को दिये हुए वचन के कारण वे मेरा वध न करेंगे—इस खयाल से निश्चिन्त होकर वह बड़े उत्साह से शस्त्रों की वृष्टि करने लगा। साथी राजाओं ने भी वैसा ही उत्साह बताया और सैनिकों ने भी अपने मालिकों का अनुकरण

किया। उधर से रुक्मिणी की रक्षा का भार बड़े भाई को सौंपते हुए श्रीकृष्ण भी पांचजन्य शंख फूँक कर मैदान में कूद पड़े। घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में शिशुपाल के सहयोगी राजा एक-एक करके भूमि पर सोने लगे। सैनिकों के पैरों की धूलि उड़ कर आकाश में छा जाने से समरांगण में कुछ अँधेरा हो गया। पशुपक्षी उस धूलिसमूह को मेघ समझने लगे। एक कवि के शब्द हैं:—

घनैर्विलोक्य स्थगितार्कमण्डलै—
श्रमूरजोभिर्निचितं नभस्तलम्।
अयायि हंसैरभिमानसं घन—
भ्रमेण सानन्दमनर्त्ति केकिभिः ॥ २५ ॥

—कुमारसम्भवम्

अर्थात् सूर्य के प्रकाश को रोका है, जिसने ऐसी, सेना द्वारा उड़ाई गई सघन धूलि को आकाश में देख कर हंस मानस-सरोवर की ओर जाने लगे और मयूर आनन्द से नाचने लगे; क्योंकि भ्रम से उन्होंने उस धूलिसमूह को मेघ समझ लिया था।

शिशुपाल ने जब चारों ओर अपने सहयोगी राजाओं के रुण्डमुण्ड गिरते हुए देखे तो उसका धैर्य छूट गया और वह श्री कृष्ण को पीठ दिखा कर भाग गया। किसी कवि ने कहा है:—

खद्योतो द्योतते तावद्यावन्नोदयते शशी।
उदिते तु सहस्रांशौ न खद्योतो न चन्द्रमाः ॥ २६ ॥

अर्थात् जुगनू तभी तक चमकता है, जब तक चन्द्र का उदय नहीं हो जाता और सूर्य का उदय होने पर तो चन्द्रमा और जुगनू दोनों फीके पड़ जाते हैं। शिशुपाल ने जब तक अपने से

कमजोर राजाओं को देखा था, तभी तक वह अपने शौर्य का अभिमान करता था, किन्तु श्रीकृष्ण जैसे शूरवीर का सामना होते ही उसका सारा अभिमान गल गया था। सूत्रकारों ने कहा है:—

सूरं मण्णइ अप्पाणं, जाव जेयं न पस्सती।
जुज्झंतं दढधम्माणं, सिसुपालो व महारहं ॥२७॥

—सूयगडांग ३।१।१

[अर्थात्–कायर पुरुष तभी तक अपने को महापराक्रमी समझता है, जब तक उसे विजेता (अपने से बढ़ कर बलवान्) के दर्शन नहीं होते। जैसे शिशुपाल अपने को शूरवीर मानता था, किन्तु तभी तक कि जब तक उसका दृढ़धर्मी महारथी श्रीकृष्ण से युद्ध में सामना नहीं हुआ था।]

हाँ, तो शिशुपाल के भागते ही श्रीकृष्ण द्वारा की गई विजयसूचक शंखध्वनि को सुनते ही नागरिक समझ गये कि अपनी विशाल सेना के साथ गये हुए म० शिशुपाल परास्त हो गये हैं। रुक्मकुमार को भी यह बात समझते देर न लगी कि मेरा मित्र पराजित हो गया है, इसलिए उसका खून खौल उठा, भुजाएँ फड़कने लगीं, मारे गुस्से के चेहरा लाल हो गया और अपनी सुविशाल सेना के साथ वह भी समरांगण में जा पहुँचा।

उधर अपने डेरे पर एकान्त में बैठ कर शिशुपाल पछतावा करने लगा कि मैंने ज्योतिषी, भौजाई और पत्नी की बात मान ली होती तो कितना अच्छा होता। अब मैं कौन-सा मुँह लेकर चन्देरी के नागरिकों के बीच जाऊँगा? भौजाई और पत्नी भी मुझे ताने मारेंगी। मैं उनके ताने कैसे सहूँगा? यहाँ ठहरने में भी अपमान है, तब जाऊँ कहाँ अच्छा तो यह हो कि मैं आत्महत्या ही कर

लूँ। अपने इन विचारों को उसने मन्त्री से कह दिया। सुन कर मन्त्री ने यों समझाया:—

"राजन्! आप का यह विचार बहुत भयंकर है। आत्म-हत्या को धर्माचार्यों ने बहुत बड़ा पाप माना है। जैसे छाया शरीर के साथ रहती है, वैसे ही मनुष्य के शुभाशुभ कर्म भी उसकी आत्मा के साथ लगे रहते हैं-इसलिए आत्महत्या करने पर भी अगले भव में आपको शुभाशुभ फल अवश्य भोगना पड़ेगा। सुख-दुःख देने वाले कर्म हैं, शरीर नहीं, तब शरीर का नाश करने की अपेक्षा आप कर्मों के नाश का प्रयत्न क्यों नहीं करते? दण्ड तो अपराधी को ही देना चाहिये। अपराधी शरीर नहीं है, कर्म हैं। वैसे भी आत्महत्या संसार में वे लोग ही करते हैं, जो अज्ञानी और कायर होते हैं। आप तो बड़े समझदार और शूरवीर हैं। हार-जीत तो वीरों की ही होती है-उसकी क्या पर्वाह? आप मन में धैर्य धारण कीजिये। इस समय आपका तो यह कर्त्तव्य हो जाता है, कि जो लोग युद्ध में काम आये हैं, उनके निराधारकुटुम्बियों को धैर्य बँधायें; आर्थिक सहायता देकर उन्हें सन्तुष्ट करें।"

मन्त्री की इस बात से शिशुपाल को प्रसन्नता हुई। उसकी यह प्रसन्नता दूनी होगई, जब एक गुप्तचर ने दौड़ते हुए आकर निवेदन किया कि" रुक्मकुमार अपनी चतुरंगिणी सेना ले कर श्रीकृष्ण से युद्ध करने आये हैं।"

रुक्मकुमार को सामने आया हुआ देख कर श्रीकृष्ण ने फिर अपना शारंग उठाया और बरसने वाली बाणों की वृष्टि को काटने लगे। रुक्मकुमार ने तथा उसकी सेना ने अत्यन्त उत्साह के साथ अपने-अपने हाथ दिखाये; किन्तु वासुदेव श्रीकृष्ण के सामने उनकी दाल कैसे गलती? आखिर श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी

को दिये हुए वचन की याद करके रुक्मकुमार को मारा तो नहीं, किन्तु एक बाण से उसके धनुष की प्रत्यञ्चा तोड़ डाली। रुक्म शिशुपाल जैसा कायर नहीं था कि हिम्मत छोड़ कर भाग जाता! प्रत्यञ्चा के टूटते ही उसने अपनी गदा उठाई और उसके प्रहार से गरुड़ध्वज रथ की विशाल पताका काट कर जमीन पर गिरा दी। यह देख कर श्रीकृष्ण ने अपने बड़े भाई को इशारा किया। उसका आशय समझ कर बलभद्रजी ने पीछे से रुक्म को पकड़ लिया और रस्सी से मजबूत बाँध कर उसे रथ में डाल दिया।

२६-पुत्र प्राप्ति

र्म योगी श्रीकृष्ण ने जब यह देखा कि रुक्म-कुमार के पकड़े जाते ही उसके सैनिक भाग गये हैं तो उन्होंने तीसरी बार विजयसूचक शंख ध्वनि की। इस तीसरी शंखध्वनि के सुनते ही शिशुपाल के मन में घोर निराशा छागई और वहाँ से वह चुपचाप अपने साथियों के साथ चन्देरी की ओर चल पड़ा।

× × ×

इधर बलभद्रजी ने रुक्मकुमार की मूँछें उखाड़ डालीं और अनुजवधू से कहा:—"देखो! इनके मुँह पर कहीं-मक्खियाँ न बैठ जायँ।" इस व्यंग्यवचन से रुक्मकुमार बहुत-बहुत शर्मिंदा हुआ।

रथ रवाना हुआ, किन्तु अपने भाई की दुर्दशा को देख कर रुक्मिणी का कोमल दिल सहानुभूति से भर गया। उसने अपने भाई को बन्धनमुक्त करने का निश्चय किया और रथ से नीचे उतर कर रास्ते में आगे आकर खड़ी हो गई। श्रीकृष्ण ने इस प्रकार रास्ता रोक कर खड़ी हुई रुक्मिणी को देखकर कारण पूछा तो उत्तर मिला:—"मैं क्षमा चाहती हूँ। आप वीर हैं, इसलिए क्षमा कीजिये। कहते हैं:—क्षमा वीरस्य भूषणम्।"

श्रीकृष्ण:—"क्षमा तो उसे की जाती है, जिसने कोई अप-राध किया हो। तुमने कौनसा अपराध किया?"

रुक्मिणी:—"अपराध मेरे भाई ने किया है। मैं चाहती हूँ कि आप उसे क्षमा करके बंधन-मुक्त करदें।"

श्रीकृष्ण:—"जिसके कारण तुम्हें अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा जिसने भरी सभा में पिताजी के प्रस्ताव का विरोध करके उनका अक्षन्तव्य अपमान किया, जिसने हमारे रथ की ध्वजा तोड़ कर गिरा दी-उसे कैसे माफ किया जाय ?"

रुक्मिणी:—"धातकीखण्ड के अधिपति महाराज पद्मोत्तर ने द्रौपदी को हरण करने का अपराध किया था, फिर भी आपने उन्हें माफ किया था, इस प्रकार जब शत्रु को भी माफ किया जा सकता है, तब यह तो मेरा भाई है-आपका साला है। मेरा भाई बन्धन में हो और मैं आराम से बैठी रहूँ-ऐसा कैसे हो सकता है ? भाई को बन्धन में देख कर कौन-सी बहन का दिल न दुखेगा ? सोचिये !"

श्रीकृष्ण:—"किन्तु मैंने तो तुम्हारे भाई को बाँधा नहीं है। जिसने बाँधा है, उसीसे प्रार्थना करनी चाहिये।"

यह सुन कर कातर नयनों से बलभद्रजी की ओर रुक्मिणी देखने लगी। करुणा लाकर बलभद्रजी ने श्रीकृष्ण से कहा:—

"रुक्मिणी का दुःख मिटाने के लिए रुक्म के बन्धन खोल दो भैया ! उसे काफी दण्ड मिल चुका है।"

यह सुनते ही श्रीकृष्ण ने साले के बन्धन खोल कर प्रेम से उसे गले लगाते हुए कहा:—"मैं तुम्हारे जैसा साहसी साला पाकर बहुत खुश हूँ।"

रुक्म ने भी बलभद्रजी के और फिर बहिनोईजी के चरणों में प्रणाम करके कहा:—"अच्छा हुआ, जो आपने मुझे दण्डित

किया; अन्यथा मेरा क्रोध शान्त न होता और मैं आपके पराक्रम को भी नहीं समझ पाता। खैर, जैसी भवितव्यता थी, वैसा ही हुआ। अब आप कुन्दनपुर पधारिये, मैं ठाठ से आपका बहिन के साथ विवाह करवा दूंगा।"

श्रीकृष्ण:—नहीं, विवाह तो एक तरह से हो ही चुका है। प्रतिज्ञाएँ ग्रहण करने का कार्य रहा है, सो वह कहीं भी हो जायगा। मैं वहाँ आकर फालतू खर्च करवाना ठीक नहीं समझता। जिस में कम से कम खर्च हो वही आदर्श विवाह है-ऐसा मैं अपनी कृति से सिद्ध करना चाहता हूं। इसलिए अब तुम जा सकते हो!"

एक बार फिर से दोनों को प्रणाम करके रुक्मकुमार वहाँ से कुन्दनपुर के राज महल में लौट आया। मालूम हुआ कि अपनी सेना के साथ म० शिशुपाल चन्देरी चले गये हैं। रुक्मकुमार ने पिताजी के चरणों में प्रणाम किया और क्षमा माँगते हुए कहा:— "आगे मैं कभी आपका अपमान न करने की प्रतिज्ञा करता हूँ।" महाराज भीम ने भी अपने पुत्र को छाती से लगा लिया।

उधर म० शिशुपाल बेइज्जती से बचने के लिए रात को चन्देरी में प्रविष्ट हुए और चुपचाप अपने शयनागार में जाकर सो गये। प्रातः काल भौजाई की दृष्टि उन पर पड़ी तो उसने मनमें सोचा कि काम बिगड़ जाने के बाद ताने कसना या उपालम्भ दे कर जले पर नमक छिड़कना ठीक नहीं। अब मुझे किसी तरह सान्त्वना देकर म० शिशुपाल का दुःख कम करने की ही कोशिश करनी चाहिये। फिर प्रेमल स्वर में कहा:—

"देवरजी! सभी प्राणी अपने-अपने कर्मों के आधीन हैं। इसीलिए भवितव्यता के अनुसार बुद्धि भी बदल जाया करती है- तादृशी जायते बुद्धिर्यादृशी भवितव्यता॥ होनहार टलती नहीं।

जो होना था, सो होगया; अब रोने-धोने से क्या लाभ ? सन्तों का कहना है कि बीती बातें भूल कर भविष्य में सावधानी रखनी चाहिये। आप शान्ति धारण कीजिये और प्रतिज्ञा कर लीजिये कि आगे फिर कभी बिना पूरा विचार किये, कोई कार्य न किया जाय।"

भौजाई की इन बातों से म० शिशुपाल के शोकसन्तप्त मानस को सान्त्वना मिली और भौजाई के चरणों में प्रणाम करके उन्होंने भविष्य में बिना विचारे कोई भी कार्य शुरू न करने की प्रतिज्ञा स्वीकार कर ली। बहुत-से मनुष्यों ठोकर खाने के बाद अक्ल आती है। म० शिशुपाल भी वैसे ही लोगों में से एक थे। अब उनका अभिमान गल चुका था। उन्होंने युद्ध में काम आने वाले सभी सैनिकों के कुटुम्बियों को यथावश्यक आर्थिक सहायता से सन्तुष्ट किया और फिर से वे पहले ही के समान शिशुवत् प्रजा का पालन करके अपने "शिशुपाल" नाम को सार्थक करने में जुट गये।

\+ \+ \+

उधर रथ को हाँकते हुए बलभद्रजी उसे गिरनार पर्वत पर ले गये। स्वयं पुरोहित बनकर उन्होंने वहाँ अनुज और अनुजवधू के वैवाहिक कार्यक्रम को पूर्ण किया। श्रीकृष्ण और रुक्मिणी ने परस्पर इस प्रकार अपनी-अपनी इच्छाएँ प्रकट कीः—

"पर-स्त्री यदि रम्भा के समान भी सुन्दर हो तो भी आप उसे देखकर कभी मोहित न बनें, कुटुम्ब की रक्षा करते रहें, पशुओं का पालन करते रहें, न्याय से द्रव्योपार्जन करें तो मैं आपकी पत्नी बनती हूँ।" रुक्मिणी की यह बात सुनकर श्रीकृष्ण बोलेः—"पर-पुरुष यदि कामदेव से भी अधिक सुन्दर हो तो भी तुम उस पर

आसक्त न बनो अर्थात् अपने पतिव्रत धर्म का बराबर पालन करती रहो, मन-वचन और काया से मेरे धर्म में सहायक बनो तो मैं तुम्हारा पति बनता हूं।"

इस पर दोनों ने आत्मा और परमात्मा की साक्षी से परस्पर एक दूसरे की इच्छाएँ पूर्ण करने की प्रतिज्ञाएँ कीं। फिर वहाँ से तीनों द्वारका आये।

अन्तःपुर में पहुँच कर रुक्मिणी ने अपनी सासू देवकी को प्रणाम किया। नववधू को देखकर देवकी भी बहुत प्रसन्न हुई।

सेवा, भक्ति और प्रेमल व्यवहार से रुक्मिणी ने सभी सौतों को प्रसन्न कर दिया विनय और प्रेम से सबको वश में किया जा सकता है। पुरुष पुरुष को वश में कर सकता है, किन्तु औरतों के द्वारा औरतों को वश में किया जाना काफ़ी कठिन है। औरत होते हुए भी रुक्मिणी ने सभी अन्तःपुर की रानियों (सौतों) को वश में कर लिया था।

गरीब घराने की औरतें सहज ही वश में हो जातीं हैं, अमीर घराने की नहीं; किन्तु रुक्मिणी के सामने तो बड़े-बड़े राजपरिवार की कन्याओं (सौतों) को वश में करने का सवाल था, जिसमें वह पूरी तरह से सफल हुई।

बड़ा छोटों को जल्दी वश में कर सकता है, किन्तु छोटा बड़ों को वश में करे—यह आश्चर्यजनक है। रुक्मिणी अन्तःपुर की सभी महिलाओं में छोटी थी, फिर भी उसने अपने व्यवहार से सब को मन्त्रमुग्ध कर दिया।

श्रीकृष्ण भी उस पर सबसे अधिक प्रेम करते थे। उसके गुणों पर प्रसन्न होकर उन्होंने उसे पट्टरानी पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

गृहस्थावस्था में सानन्द रहते हुए रुक्मिणी को एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। बड़े ठाठ से जन्मोत्सव मनाया गया। वह पुत्र इतना सुन्दर था कि साक्षात् कामदेव ही मालूम होता था, इसलिए उसका नाम भी "प्रद्युम्नकुमार" रख दिया गया। "प्रद्युम्न" कामदेव का ही पर्यायवाची शब्द है। रुक्मिणी बड़े वात्सल्य से उसका पालन-पोषण करने लगी।

२७-प्रव्रज्या

नक और कामिनी के त्यागी सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् नेमिनाथ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए एक दिन उसी द्वारका नगरी के बाहर सहस्राम्रवन नामक उद्यान में आकर ठहरे ।

ये वर्तमान चौबीसी में २२ वें तीर्थङ्कर के रूप में विख्यात हैं । बचपन से ही ये बड़े दयालु थे । जवानी में इच्छा न होते हुए भी कुटुम्बियों के अत्यधिक आग्रह से राजकन्या राजीमती के साथ इनके विवाह की तैयारियाँ हुई । बरात निकाली गई । सजधज कर नेमिकुमार भी एक विशाल हाथी पर बैठे और रवाना हुए । ससुराल के शहर में राजमहल के निकट ही एक बाड़े में हजारों पशुओं को बँधे हुए देखकर इन्हें शंका हुई । महावत से पूछाः—"ये पशु यहाँ इस प्रकार क्यों बाँध कर रक्खे गये हैं ?

महावत ने कहाः—"भगवन् ! ये पशु काटे जायँगे । विवाह के निमित्त से आमन्त्रित आगन्तुक अतिथियों में से जो आमिषाहारी हैं, उनका इनके पकाये हुए मांस से आतिथ्य सत्कार किया जाने वाला है । बस, इसलिए ये पशु इस समय इकट्ठे इस बाड़े में बाँध कर रक्खे गये हैं !"

भगवान् ने ज्यों ही यह सुना, त्यों ही उनके सारे शरीर में सिहरन होने लगी । हृदय में करुणा की सरिता बह चली । उन्होंने सोचा कि यदि मैं विवाह न करूँ तो ये सारे पशु बच सकते हैं ।

यह पञ्चेन्द्रिय-प्राणियों की घोर हिंसा सिर्फ मेरे विवाह के निमित्त से ही तो हो रही है! उनके शब्द ये हैं:—

"जइ मज्झ कारणा एए, हम्मन्ति सुबहू जिया।
न मे एयं तु निस्सेसं, परलोगे भविस्सइ॥"

—उत्तराध्ययन २२।१६

उसी समय उन्होंने सारे वस्त्रालंकार खोल कर उसे दे दिये। फिर पंचमुष्टि लोच करके प्रव्रज्या अंगीकार की और गिरनार पर्वत पर पहुंच कर कर्मक्षय के लिए घोर तपस्या करने में जुट गये। केवलज्ञान प्राप्त होने पर साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ की स्थापना की। संघ को ही तीर्थ कहते हैं, इसलिए तीर्थ की स्थापना करने से वे तीर्थंकर कहलाये।

ऐसे परम-उपकारी सर्वज्ञ प्रभु का द्वारका में पदार्पण होते ही प्रवचन सुनने के लिए नर-नारी जाने लगे।

सज्जनो! यदि कोई आदमी ऐसी आमन्त्रणपत्रिका छपवा कर किसी शहर में बटवा दे कि जो कोई मेरे पास अमुक टाइम पर आयगा, उसे मैं लखपति बनने का उपाय बताऊँगा! तो क्या होगा? होगा यही कि नींद, चाय, खान-पान आदि सैंकड़ों जरूरी कामों को भी छोड़ कर लोग भागे जायँगे वहाँ! तो फिर जो प्रभु आत्मा को परमात्मा बनाने का उपाय बताने आये हैं, उनके पास अपने हजारों जरूरी काम छोड़ कर भी क्यों न जाना चाहिये, किन्तु यह होगा तभी कि जब लोगों में समझदारी हो-विवेक हो। आजकल के नागरिकों में वैसा विवेक हो या न हो, किन्तु द्वारका के नागरिकों में वैसा विवेक जरूर था।

श्रीकृष्ण भी परिवार-सहित धर्मप्रवचन सुनने के लिए गये

और प्रवचन के समाप्त होने पर जब श्रोतागण समवसरण से निकल कर अपने-अपने निवास-भवनों की ओर चले गये तब उन्होंने हाथ जोड़ कर प्रभु से यह प्रश्न किया:—

"इमीसे णं भंते ! बारवईए णयरीए दुवालसजोयण आयामाए जाव पच्चक्खं देवलोगभूयाए किंमूलए विणासे भविस्सइ ?"

(हे भगवन् ! बारह योजन लम्बी यावत् प्रत्यक्ष देवलोक के समान सुन्दर इस द्वारावती नगरी का विनाश किस कारण से होगा ?)

इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने फरमाया:—

"एवं खलु कण्हा ! इमीसे बारवईए णयरीए दुवालस-जोयणआयामाए जाव पच्चक्खं देवलोयभूयाए सुरग्गिदीवायणमूलए विणासे भविस्सइ ॥"

—अन्तकृद्दशांगसूत्र

(निश्चयपूर्वक हे कृष्ण ! बारह योजन लम्बी यावत् प्रत्यक्ष देवलोक के समान सुन्दर इस द्वारावती नगरी का विनाश सुरा, अग्नि और द्वैपायन ऋषि के निमित्त से होगा ।)

अन्तगड सूत्र के अनुसार श्रीकृष्ण की रुक्मिणी-सहित कुल आठ पट्टरानियाँ थी । उनमें से पद्मावती, गौरी, गान्धारी, लक्ष्मणा सुसीमा, जम्बूवती और सत्यभामा इन सातों रानियों ने भी प्रव्रज्या अंगीकार करली ! यह सब देखकर रुक्मिणी भला क्यों पीछे रहती ? उसे भी वैराग्य आगया । संसार को क्षणिक और निःसार समझ कर उसने भी श्रीकृष्ण से प्रव्रज्या की आज्ञा मांगी ।

प्रव्रज्या दिलवाने के लिए श्रीकृष्ण की दलाली प्रसिद्ध है। जब वे दूसरों को प्रव्रज्या के लिए प्रेरणा दिया करते थे, तब अपनी पट्टरानी रुक्मिणी को प्रव्रज्या क्यों नहीं दिलाते ? बड़े ठाठ से दीक्षा-महोत्सव करके श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को भगवान् अरिष्ठनेमि के करकमलों से प्रव्रज्या दिलवा दी।

प्रव्रजित होकर महासती रुक्मिणी ने सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों तक का मननपूर्वक अध्ययन किया और फिर संयम एवं तपस्या से आत्मा के कर्मों को नष्ट करके अन्त में सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गई।

यहाँ एक सवाल उठता है कि अनिष्ट भविष्य सुनाने से सुनने वालों को दुःख होता है; किसी को दुःख पहुंचाना तो हिंसा है-इसलिए भगवान् के द्वारा अनिष्टफल का प्रकाशित किया जाना उचित है क्या ?

उत्तर में कहना है कि भगवान् भविष्य को निश्चितरूप से जानते है. इसलिए बताते हैं-फिर भले ही वह इष्ट हो या अनिष्ट! क्योंकि सर्वज्ञ सर्वदर्शी होने से वे अनिष्टफलनिर्देश के परिणाम को भी जानते हैं। यहाँ आगे होने वाले परिणाम को जान कर ही उन्होंने अनिष्ट भविष्य बताया है। वे जानते थे कि इस निमत्त से अनेक भव्य जीवों को चारित्र-ग्रहण का लाभ मिल जायगा और आत्मकल्याण करके वे जन्म-जरा-मरण के बन्धन से सदा के लिए मुक्त हो सकेंगे। आखिर हुआ भी वैसा ही।

श्रीकृष्ण ने सारे शहर में घोषणा करवा दी कि अमुक-अमुक कारणों से द्वारका नगरी नष्ट होने वाली है, इसलिए भविष्य की इस आपत्ति से बचने के लिए जो स्त्रीपुरुष अरिहन्त अरिष्ट-नेमि के पास प्रव्रज्या अंगीकार करके आत्मकल्याण के मार्ग में

चलना चाहें, उनका ठाठ से दीक्षामहोत्सव राज्य की ओर से मनाया जायगा और पीछे रहे हुए उनके निराधार कुटुम्ब का भी पालन-पोषण किया जायगा।

इस घोषणा के फलस्वरूप हजारों स्त्रीपुरुषों ने भगवान् के पास प्रव्रज्या अंगीकार कर ली।

महासती रुक्मिणी ने अपने जीवन से एक सुकन्या, सुपत्नी, सुमाता और सुसाध्वी का आदर्श उपस्थित किया है। आज की महिलाएँ यदि इस जीवनी के आदर्श को सामने रख अपने जीवन को भी उसी साँचे में ढालने का प्रयत्न करें तो अवश्य उनका आत्म-कल्याण होगा! ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥